

अध्याय-1

'हिन्द स्वराज' के 'शिक्षा' अध्याय व 'मंगल प्रभात' के परिप्रेक्ष्य में 'नीति शिक्षा' की संकल्पना व उसका समाधान: गुणात्मक व दार्शनिक अध्ययन

1.1 प्रस्तावना

जब विश्व के अन्य देश पशु की तरह का जीवन यापन कर रहे थे, उस समय, अर्थात्, प्राचीन भारत में, शिक्षा की शुरुआत हुई थी। भारत में शिक्षा की शुरुआत आज से लगभग 4000 वर्ष पूर्व हुई थी। मुनियों एवं महर्षियों ने सभ्यता की शुरुआत में ही शिक्षा के महत्व को समझ लिया था कि शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति, मानव जाति, समाज का कल्याण सम्भव है। परिणामस्वरूप उन्होंने देश में शिक्षा की समुचित व्यवस्था की थी। शिक्षा की यह व्यवस्था पूरी तरह से भारतीय थी। यह प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था शताब्दियों तक भारतीय वैदिक संस्कृति एवं साहित्य का संधारक रही है। (सिंह, 2004)

शिक्षा भारत में विदेशी नहीं है। कोई भी ऐसा देश नहीं है, जहाँ उत्पत्ति के समय से इतनी जल्दी ज्ञान के प्रति प्रेम हुआ हो या जिसने इतना स्थायी और सशक्त प्रभाव डाला हो। वैदिक काल के सामान्य कवियों से लेकर आजकल के दार्शनिक तक शिक्षकों एवं विद्वानों का एक अटूट क्रम भारत में मिलता है। (सिंह, 2004)

वैदिक काल का समय लगभग 2500 ई. पूर्व से लगभग 500 ई. पूर्व तक है। इस प्रकार शिक्षा का प्रारम्भ ऋग्वेद के रचना काल हुआ, जो कि लगभग 2500 ईसा पूर्व से माना जाता है, और उस समय वेदों की प्रधानता थी तथा शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य एवं अन्य बातें लगभग एक समान थी। उस काल में शिक्षा से अभिप्राय वेदाकालीन शिक्षा से है। वेदों में विद्या, ज्ञान, बोध और विनय आदि अर्थों में शिक्षा से आशय है।

इस काल में शिक्षा सांसारिक न होकर आध्यात्मिक थी और ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने का प्रमुख साधन थी। पुस्तकीय ज्ञान अर्जित करने को शिक्षा नहीं माना जाता था और न ही शिक्षा को जीविकोपार्जन का साधन माना जाता था। शिक्षा को ज्ञान का प्रकाशपुंज माना जाता था; शिक्षा को मनुष्य के अज्ञानता रूपी अन्धकार को मिटाकर सर्वांगीण विकास करने का साधन माना जाता था। (सिंह, 2004)

शिक्षा को ज्ञान, प्रकाश और शक्ति का ऐसा स्रोत माना जाता था, जो हमारी शारीरिक, मानसिक, भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों तथा क्षमताओं का उत्तरोत्तर और सामंजस्यपूर्ण विकास करके हमारे स्वभाव को परिवर्तित करती है और उत्कृष्ट बनाती है। (अल्तेकर, 1973)

प्राचीन भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों एवं आदर्शों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है—ईश्वर-भक्ति की भावना एवं धार्मिकता का समावेश, चरित्र का निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, सामाजिक कर्तव्यों को समझना, सामाजिक कुशलता की उन्नति तथा संस्कृति का संरक्षण तथा प्रसार। (अल्तेकर, 1973)

इस काल में मुख्य उद्देश्य बालक में ईश्वर भक्ति और धर्मिकता की भावना विकसित करना था तथा बालक के चरित्र का निर्माण करना था; छात्रों को सदाचार के उपदेशों एवं महापुरुषों के आदर्शों का ज्ञान कराया जाता था; छात्रों को ब्रह्मचर्य का पालन करवाया जाता था; गुरु स्वयं आदर्श चरित्र वाले होते थे; आश्रमों/गुरुकुलों का वातावरण धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता से परिपूर्ण होता था। (सिंह, 2004)

लगभग 400 ई. पूर्व से पहले प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। बल्कि बालकों को घर में ही शिक्षा दी जाती थी और जब बालक 5 वर्ष का हो जाता था तब उसकी प्रारम्भिक शिक्षा का आरम्भ विद्यारम्भ संस्कार से होता था। सबसे पहले शिक्षक बालक की उंगली पकड़कर बिछे हुए चावलों में अक्षर बनाना सिखाता था। सभी वर्गों के बालक यह शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। शिक्षा की अवधि की जानकारी के लिए कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इसकी अवधि 6 वर्ष होने की बात कही जाती है। शुरुआत में माताओं द्वारा बच्चों को सर्वप्रथम कुछ वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करना सिखाया जाता था और याद कराया जाता था और इसके बाद ही पढ़ने एवं लिखने की शिक्षा दी जाती थी जिसके अन्तर्गत प्रारम्भिक भाषा ज्ञान, प्रारम्भिक व्याकरण एवं छन्दशास्त्र और व्यावहारिक गणित की शिक्षा दी जाती थी; कथा-कहानियों द्वारा बालक की कल्पना-शक्ति का विकास और चरित्र-निर्माण किया जाता था। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद बच्चे गुरुकुल में प्रवेश पाने के लिये योग्य हो जाते थे। इस प्रकार की शिक्षा में साहित्य एवं धर्मशास्त्र अध्ययन की अवधि 10 वर्ष थी और प्रति वेद के अध्ययन की अवधि 12 वर्ष; अर्थात्, चार वेदों के अध्ययन में 48 वर्ष का समय लगता था। इस काल की शिक्षा के पाठ्यक्रम में दो प्रकार की विद्याओं का उल्लेख मिलता है—पराविद्या और अपराविद्या। पराविद्या के अन्तर्गत वेद, पुराण, दर्शन और उपनिषद् आदि आध्यात्मिक विषयों का अध्ययन कराया जाता था और अपराविद्या में इतिहास, अर्थशास्त्र, ज्योतिष, औषधिशास्त्र, भौतिकशास्त्र भूगर्भशास्त्र, रसायनशास्त्र, तर्कशास्त्र, धनुर्विद्या, शिल्पविद्या और कला आदि सांसारिक विषयों का अध्ययन कराया जाता था। यह भी शिक्षा मौखिक रूप में दी जाती थी। (सिंह, 2004)

शिक्षा के दौरान विद्यार्थियों को मनन, चिन्तन, एवं स्वाध्याय द्वारा पाठ्यवस्तु पर अधिकार कराया जाता था। गुरु अपने शिष्यों को पुत्रवत् मानते थे और श्रेष्ठतम विकास करने के लिए हमेशा लगे रहते थे और दूसरी ओर शिष्य भी गुरु को अपना मानस पिता मानते थे व उनकी सेवा करना अपना धर्म मानते थे। शिक्षा देना गुरुओं का धार्मिक कर्तव्य माना जाता था। छात्रों से शुल्क नहीं लिया जाता था हालांकि शिक्षा की समाप्ति पर छात्र गुरुदक्षिणा देते थे। फिर भी निर्धन छात्र गुरुदक्षिणा के बदले गुरु की सेवा करते थे। विद्यालयों की जरूरतों की पूर्ति करना समाज एवं राज्य का कर्तव्य था जिसके अन्तर्गत धनी व्यक्ति गुरुकुलों को दान देते थे तथा राजा गुरुकुलों की आर्थिक सहायता करते थे। शिक्षा की समाप्ति पर किसी प्रकार की परीक्षा नहीं ली जाती थी और न ही किसी प्रकार की डिग्री दी जाती थी। स्त्रियों को भी पुरुषों की तरह शिक्षा देने की सुविधा थी। स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं; वेद, मीमांसा आदि धर्मशास्त्रों का अध्ययन करती थीं; और साथ-ही-साथ ही नृत्य, संगीत तथा अन्य ललित कलाओं का भी ज्ञान प्राप्त करती थीं। सैनिक शिक्षा भी कुशल आचार्यों द्वारा दी जाती थी, किन्तु विशेष रूप से क्षत्रियों एवं राजकुमारों को दी जाती थी। इसी प्रकार युद्ध-कला एवं अस्त्रों-शस्त्रों व चिकित्सा शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी। ये दोनों प्रकार की शिक्षा विषय-विशेषज्ञों के द्वारा दी जाती थीं। चिकित्सा शिक्षा में रोग, निदान, औषधि, शल्य, विष एवं रक्त परीक्षण आदि की शिक्षा दी जाती थी और इस शिक्षा की अवधि सामान्यतः आठ वर्ष थी। (सिंह, 2004)

(अल्तेकर, 1973)के अनुसार: “अनेक विषयों का सामान्य ज्ञान देने के कार्य का लक्ष्य इस शिक्षा प्रणाली का नहीं था। इसका आदर्श विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञ तैयार करना था। ... प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली प्राचीन साहित्यिक और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के अपने उद्देश्य में विशेष सफल रही। ... सामाजिक कुशलता की वृद्धि में शिक्षा प्रणाली की यह सफलता थी कि जो हिन्दू समाज को अनेक शताब्दियों के लिये सभ्यता के अभियान में अगुवा होने में सामर्थ्य देती रही। ... नागरिक उत्तरदायित्व की भावना अनुप्राणित करने में शिक्षा प्रणाली की सफलता भी अनूठी थी।”

शिक्षा ऑटोनोमस थी। राज्य अथवा राजा की ओर से उसमें किसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं किया जाता था। यह शिक्षा तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप सर्वोत्तम व्यवस्थित थी, हालांकि धर्म को व्यवस्थित रूप से अधिक महत्व दिये जाने से शिक्षा धर्म का पर्याय बन गयी थी और लोक भाषाओं की उपेक्षा और संस्कृत भाषा पर ध्यान केन्द्रित था।

प्राचीन काल में भारत में गुरुकुलों में शिक्षा प्रदान की जाती थी। गुरुकुल का अर्थ है, गुरु का परिवार। यहाँ पर छात्र गुरु के घर में रह कर शिक्षा प्राप्त करते थे। गुरुकुलों में सबसे नीचे दर्जे के विद्यार्थियों के अलावा सब प्रकार के विद्यार्थी गुरु के एवज में भी काम करते थे। ऐसे गुरुकुल सारे देश में थे और प्रत्येक गुरुकुल उस गुरुकुल के गुरु के नाम से जाने जाते थे।

ऐसे गुरुकुल शोर शराबे के स्थान से दूर किसी नदी, तालाब के पास या वन में हुआ करते थे। गुरुकुल ऐसे स्थानों पर होते थे जिस जगह पर्याप्त शांतिपूर्ण माहौल और भूमि उपलब्ध होती थी, इतनी कि जितनी विद्यार्थियों के अध्ययन, व्यायाम, अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा आसानी से दी जा सके। जहाँ विद्यार्थियों के हॉस्टल हों व स्वच्छ जलवायु हो। हालाँकि कुछ गुरुकुल आबादियों के पास में भी थे, उदाहरण के लिए काशी का गुरुकुल। गुरुकुल में विद्यार्थी-गुरु और विद्वानों के व्यक्तिगत संपर्क में रहते थे, उनके आचरण से प्रभावित होते थे, उनके अनुसार अपना आदर्श चरित्र बनाते थे। और गुरु भी प्रत्येक छात्र की रूचि, अभिवृत्ति आदि का व्यक्तिगत रूप में अध्ययन कर के शिक्षा देते थे और उनके समग्र व्यक्तित्व का विकास करने का प्रयत्न करते थे। उच्च किस्म के विद्वानों के संपर्क में लगातार रहने के कारण विद्यार्थियों में ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा बनी रहती थी। गुरुकुल का वातावरण आध्यात्मिक होता था व प्राकृतिक वातावरण होता था। गुरुओं के आदर्श चरित्र से लगातार शिक्षा मिलती रहती थी और उनके साथ रहने, पढ़ने-लिखने और कार्य करने तथा मार्गदर्शन लगातार प्राप्त होने के कारण विद्यार्थियों का उच्च कोटि का चरित्र बनता था और उनमें आध्यात्मिक गुणों का विकास होता था। गुरुकुलों में प्रवेश करने के पहले बच्चे अपने घर में शिक्षा प्राप्त करते थे, यानी प्रारंभिक शिक्षा। गुरुकुलों में ब्राह्मण वर्ण के छात्रों को आठवीं वर्ष में प्रवेश मिलता था और क्षत्रिय वर्ण के बच्चों को 11 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर गुरुकुल में प्रवेश कराया जाता था। गुरुकुल में प्रवेश के समय बच्चों को गुरु उपदेश देते थे:- पृथ्वी पर सोना है, नमकीन पदार्थ व मीठे पदार्थ का सेवन नहीं करना है, सुबह शाम ईश्वर की उपासना करनी है, प्रातः काल हवन करना है, गुरु की सेवा करनी है और सुबह और शाम को विद्या स्थल के पास स्थित गाँव या नगरों में जाकर अलग-अलग घरों से दो बार भिक्षा मांग कर लाना होगा, शराब मांस नहीं खाना होगा, नहाना किसी बर्तन से पानी निकाल कर करना होगा; सरोवर या नदी में डुबकी लगाकर नहीं। कभी झूठ नहीं बोलना होगा, स्त्रियों के संपर्क में विचरण नहीं करना होगा, जब तक कोई वस्तु न दी जाए तब तक उस वस्तु को नहीं लेना होगा। अहिंसा, सत्य, अक्रोध, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि नियमों का पालन करना होगा। बिना धोए कपड़ों को पहनना होगा, किसी की बुराई नहीं करना होगा, बासी भोजन नहीं करेंगे। तेल, मंजन, जूता, छाता और शीशे का प्रयोग नहीं करेंगे। प्रवेश के बाद छात्रों की शिक्षा शुरू की जाती थी। विद्यार्थियों को सबसे पहले शिष्टाचार की शिक्षा दी जाती थी। इस शिष्टाचार की शिक्षा में बच्चों को उठना-बैठना, बातचीत करना, आदर करना, लोगों, अतिथियों व सहपाठियों के साथ व्यवहार करना, गुरु की पत्नी का आदर करना, गुरु के पुत्रों व बच्चियों के साथ भाई-बहन के समान व्यवहार करना आदि सिखाया जाता था। और जब बच्चे शिष्टाचार करने में निपुण हो जाते थे, तब उनको विद्या का अध्ययन कराया जाता था। छात्रों की दैनिक गतिविधियां नियमित होती थी। इन दैनिक गतिविधियों में निम्न गतिविधियां शामिल होती थीं:- ब्रह्म महूर्त में उठना, आश्रम में झाड़ू लगाना, गाय का दूध

दुहना, हवन करना, दूध पीना, गुरु के दोनों चरणों को दोनों हाथों से छू कर प्रणाम करना, चुपचाप बैठ कर गुरु द्वारा सुनाए जाने वाली बातों को सुनना, यदि कोई बात समझ में न आए तो गुरु की अनुमति लेकर अपनी शंका का समाधान करना, दोपहर में अवकाश पर पास के गाँव या नगर में जाकर पका हुआ सात्विक भोजन भिक्षा मांग कर लाना; दीक्षा में मिले हुए पदार्थों को गुरु जी को देना और गुरु जी जो कुछ खाने के लिए दे उसी को खाना, खाने के बाद आराम करना और सुबह जो पाठ गुरुजी ने पढ़ाया/सुनाया उसका स्वाध्याय करना, चिंतन करना। गायों को चराना तथा लकड़ी व पानी लाना। आश्रम को शुद्ध रखना। उसके बाद यदि कोई विद्वान पुरुष जैसे ऋषि या मुनि आए हो तो उनसे इतिहास, पुराण वगैरह शिक्षाप्रद बातें सुनना। गुरु के सो जाने पर ही सोना और गुरु के प्रातः काल उठने के पहले ही उठना। शिक्षा प्रायः सावन महीने की पूर्णिमा से आरंभ होती थी। अध्ययन की कोई अवधि नहीं थी, अर्थात् विद्यार्थी जब तक अध्ययन करना चाहे गुरुकुल में रहकर अध्ययन कर सकता था। किंतु प्रायः 24 वर्ष में शिक्षा पूरी हो जाती थी। वैसे 48 वर्ष तक अध्ययन करने वालों को 'आदित्य' की उपाधि दी जाती थी। किन्हीं गिने-चुने अवसरों पर अनअध्याय का अवकाश भी दिया जाना पाया गया है। शिक्षा में आध्यात्मिक और सांसारिक विषयों की शिक्षा दी जाती थी। इसमें सांस्कारिक, नैतिक, शारीरिक और व्यवसाय संबंधी शिक्षा का दिया जाना निहित था। तीनों वेद, शिक्षा, कल्प, निरोग ज्योतिष, छंद, व्याकरण, दर्शन की शिक्षा निहित थी। नीति शास्त्र की शिक्षा सारे बच्चों के लिए अनिवार्य थी। नैतिक शिक्षा दिए जाने का साधन था, उपदेश देकर और आश्रम में पारस्परिक सेवा करके, पारस्परिक प्रेम व सहयोग का व्यवहार कराकर दी जाती थी। शारीरिक शिक्षा में प्राणायाम और व्यायाम की शिक्षा दी जाती थी। इसके अलावा नदी या तालाब वगैरह से पानी लाना, जंगल से लकड़ी लाना इत्यादि दैनिक आवश्यकताओं की चीजों का इंतजाम शरीर चलाकर करना भी शारीरिक शिक्षा में निहित था। बच्चे जिस वर्ण के होते थे उनको उनके वर्ण के गुण व कर्म के हिसाब से व्यवसाय की शिक्षा दी जाती थी। जैसे ब्राह्मण वर्ग के लिए पुरोहित का काम करना व दर्शनशास्त्र का अध्ययन करना और कर्मकांड कराना इत्यादि शिक्षाएं दी जाती थी। क्षत्रियों को दंडनीति, राजनीति, सैन्य विज्ञान, अर्थ –विज्ञान, धनुष-बाण चलाने व अन्य शस्त्र चलाने आदि विषय की शिक्षा दी जाती थी। इसी प्रकार बनियों को पशुओं को पालना, खेती-बाड़ी करना तथा व्यवसाय विज्ञान आदि विषय पढ़ाए जाते थे। आयुर्वेद की शिक्षा वैकल्पिक थी। गुरुकुल में शिक्षा प्रणाली में निम्न क्रम से शिक्षा दी जाती थी:- सुश्रुषा, श्रवण, ग्रहण करना, धारण करना, तर्क-वितर्क करना, धर्म व विज्ञान को समझना व यथार्थ का ज्ञान हासिल करना। शिक्षण विधि प्रायः मौखिक होती थी। शिक्षा हेतु प्रश्नोत्तर विधि, प्रवचन विधि, व्याख्या विधि, विवेचन विधि, और स्मरण विधियों का प्रयोग किया जाता था। प्रमुख तौर से प्रश्नोत्तर विधि व कण्ठस्थीकरण होते थे। छात्र अपनी शंकाओं/ क्षमताओं को व्यक्त करते थे और गुरु उनकी शंकाओं का समाधान उनके प्रश्नों के उत्तर को देकर करते थे।

गुरु किसी विषय व विज्ञान आदि पर स्वयं व्याख्या भी करते थे। गंभीर समस्याओं पर विवेचन होते थे। विद्यार्थी लगातार गुरुओं से विचार विमर्श करते थे। इसके अलावा छात्र भी एक दूसरे से विचार विमर्श करते थे और स्वयं चिंतन—मनन किया करते थे। गुरुकुल में गुरु शिष्य प्रणाली का प्रचलन था। इस प्रणाली की खास बात यह थी कि गुरु केवल शिक्षा के सबसे ऊच्च स्तर के विद्यार्थियों को और इस स्तर के विद्यार्थी अपने से निम्न स्तर के विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। गुरु बच्चों को अपना पुत्र समझते थे, उनसे पुत्र की तरह व्यवहार करते थे। उनके देखरेख, भोजन, रहने, कपड़े आदि का प्रबंध करते थे। गुरु बच्चों में सदाचरण की भावना बनाकर, उनकी योग्यताओं में वृद्धि करके, अनेक प्रकार के कौशलों में निपुण बना करके उनके समग्र व्यक्तित्व का विकास करते थे। इन सब कामों को करना गुरु अपना पवित्र कर्तव्य मानते थे। दूसरी ओर विद्यार्थी भी गुरु को अपना मानस पिता तथा देव समान मानते थे, और गुरु को प्रसन्न रखने के लिए लगातार प्रयत्न करते रहते थे। जहाँ तक दंड का सवाल है, तो गुरुकुल में दंड दिए जाने की घटनाएं होती ही नहीं थी क्योंकि गुरुकुल में विनय और शील हर बच्चे में उच्च प्रकृति का होता था, विद्यार्थी स्वयं अपने ऊपर कठोर अनुशासन रखते थे तथा अगर किसी विद्यार्थी से चूक हो गई या गलती हो गई हो तो विद्यार्थी उसका प्रायश्चित्त करके अपने को शुद्ध करते थे। किंतु यदि दंड दिया जाता था तो उसका रूप था, विद्यार्थियों को उपवास करना या विद्यार्थियों को गुरुकुल यानी आश्रम से निकाल देना। गुरुकुल का खर्च वगैरह चलाने की जिम्मेवारी गुरु की होती थी। गुरुकुल चलाने के लिए राजा और धनवान दान देते थे। भोजन की व्यवस्था भिक्षा द्वारा पूरी हो जाती थी। इसके अतिरिक्त विद्या पूरी करने के उपरांत विद्यार्थियों द्वारा गुरु को गुरु दक्षिणा के रूप में भी कुछ धन व वस्तुएं वगैरह दिए जाने के वचन के फलस्वरूप आश्रम के साधन होते थे। परीक्षा हमेशा होती रहती थी, रोज होती रहती थी। एक दिन पढ़ाये गये पाठ को अगले दिन विद्यार्थी से सुना जाता था और उस लेशन (यानी पाठ) को छात्र जब समझ लेते थे तब अगला पाठ पढ़ाया जाता था। इसके अलावा भी बच्चे आपस में पढ़ाए गए पाठ पर विचार—विमर्श और शंका समाधान करके एक प्रकार से रोजाना परीक्षा देते थे। परीक्षा लेने का, अर्थात्, यह ज्ञात करने का, अर्थात् शिक्षा को बच्चे में भर देने का, एक साधन यह भी था कि बच्चों को दो वर्ग में बाँट देना और फिर किसी विषय पर वार्तालाप करना। कभी—कभी दो भिन्न गुरुकुलों के छात्र आपस में किसी विषय या विज्ञान आदि पर चर्चाएं करते थे। इसके अलावा बुद्धि परीक्षणों और निपुणता परीक्षा का भी आयोजन किया जाता था। शिक्षा पूर्ण होने के बाद विद्यार्थियों का विदाई समारोह होता था। इस विदाई समारोह का नाम समावर्तन संस्कार होता था। विदाई समारोह में गुरु विद्यार्थियों को पुनः उपदेश देते थे— सदा सत्य बोलना, अपने कर्तव्य का पालन करना, स्वाध्याय में प्रमाद मत करना, आचार्य के लिए धन देते रहना, संतान उत्पन्न करने की परंपरा बनाए रखना। अपनी मां को देवी के तुल्य मानना और इसी तरह पिता को देव मानना, आचार्य को देव मानना, अतिथि

को देव मानना, और इन सब की सेवा करना, श्रद्धा से दान देना, किसी आचरण के विषय में शंका हो तो विद्वानों से परामर्श करना और उसके अनुसार व्यवहार करना। यही अनुशासन है, ऐसा व्यवहार करना ही अनुशासन है और इस तरह व्यवहार करने की उपासना करना। विदाई समारोह के अवसर पर विद्यार्थी गुरु को दक्षिणा देते थे। विद्यार्थी अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार गुरु को कुछ-न-कुछ देने की प्रतिज्ञा करता था। (सिंह, 2004)

भारत में कुछ गुरुकुल बहुत प्रसिद्ध थे इनके बारे में निम्न वर्णन किया जाता है। तक्षशिला यह गुरुकुल बहुत प्रसिद्ध व प्राचीन था। यह रावलपिंडी नगर के पास स्थित था। छठवीं सदी ईसा पूर्व में यह गुरुकुल उच्च शिक्षा के लिए बहुत मशहूर हो चुका था। यहाँ पर दूर-दूर से विद्यार्थी शिक्षा लेने आते थे, जैसे उज्जैन, मिथिला और बनारस शहर से। यहाँ पर जीवक और पाणिनि जैसे विद्वानों तथा कौटिल्य जैसे अर्थशास्त्री ने शिक्षा प्राप्त की थी। किंतु छठी सदी ईसा पूर्व पारसियों ने इस गुरुकुल पर अधिपत्य पा लिया और उसके बाद इण्डो बैक्चीरियनस, सोथियनों, कुषाणों व हूणों ने इस गुरुकुल पर आक्रमण करके उसकी गुणवत्ता को गिराया। इण्डो-बैक्चीरियनस शासकों ने एक शताब्दी से अधिक इस गुरुकुल को अपने अधीन रखा। इस गुरुकुल में आजकल के कालेजों या विश्वविद्यालयों जैसा कोई कालेज या विश्वविद्यालय नहीं था। इस गुरुकुल में बहुत ही उच्च कोटि के और विश्व प्रसिद्ध विद्वान लोग शिक्षक थे। ये शिक्षक आजकल के व्याख्याताओं की तरह किसी संस्था से संबंध नहीं रखते थे और किसी के द्वारा निर्धारित किए गए पाठ्यक्रम को न पढ़ा कर स्वयं अपना पाठ्यक्रम बनाकर उसके अनुसार विद्यार्थियों को उसकी शिक्षा देते थे। छात्र की जैसी इच्छा होती थी शिक्षक उनके हिसाब से शिक्षा देते थे। इन शिक्षकों के सह-शिक्षक के रूप में अनेक विद्वान सहायता करते थे। ये सह-शिक्षक बहुत ही उच्च कोटि के विद्वान होते थे और गुरु की अनुपस्थित में या गुरु के आदेश के अनुसार समय-समय पर विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे। प्रवेश पाने के लिए 16 वर्ष की आयु न्यूनतम निर्धारित थी। इस गुरुकुल में विद्यार्थियों को शुल्क देना पड़ता था; जैसे प्रवेश के समय एक हजार स्वर्ण मुद्राएं या शिक्षा प्राप्त होने के बाद एक हजार स्वर्ण मुद्राएं देने की प्रतिज्ञा करना या गुरु की सेवा करना। इस गुरुकुल में विद्यार्थी किसी विशेष विषय में विशिष्ट ज्ञान व योग्यता हासिल करने के लिए आते थे। विषयों का चयन विद्यार्थियों पर निर्भर था। इस गुरुकुल में 3 वेद, व्याकरण, दर्शन, सर्जरी, धनुर्विद्या, सैन्य कलायें, नक्षत्र, विद्या, ज्योतिष, शकुन परीक्षण, लेखा शास्त्र, वाणिज्य, कृषि, जादू, खजाने खोजने की कला, संगीत व नृत्य आदि विषय की शिक्षा प्रदान की जाती थी। शिक्षण कार्य दिन और रात की शिफ्ट में चलता था। जो विद्यार्थी शुल्क देते थे उनका शिक्षण सुबह से चलता था और जो विद्यार्थी फीस देने में असमर्थ होते थे और गुरु की सेवा करके शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक होते थे उन छात्रों की कक्षा रात्रि शिफ्ट में लगती थी। अनुशासन की इस गुरुकुल में कोई समस्या ही नहीं थी

क्योंकि जो विद्यार्थी यहां आते थे वह स्वयं स्व-अनुशासित होते थे, उनका जीवन नियमित और नियंत्रित होता था, कठोर परिश्रम व लगन के साथ विद्या अध्ययन में ही लगे रहते थे, संयम बरतते थे, और ब्रम्हचर्य का पालन करते थे। विद्यार्थी शिक्षकों के संपर्क में निवास करते थे। कुछ छात्र आवास का खर्चा अध्ययन शुरू होने से पहले दे देते थे और कुछ छात्र अपने अध्ययन के समाप्त होने के बाद देते थे। हर छात्र के रहने व उनके खाने-पीने की व्यवस्था गुरु के द्वारा की जाती थी। किंतु अपवाद स्वरूप कुछ छात्र, जैसे राजकुमार, अपने आवास और भोजन की व्यवस्था स्वयं अलग से करते थे। इस गुरुकुल में परीक्षा नहीं होती थी। इस गुरुकुल में कोई डिग्री या सर्टिफिकेट नहीं दिया जाता था। किंतु अध्ययन के बाद गुरु जाँच करते थे, विद्यार्थियों के द्वारा प्राप्त किए गए ज्ञान की। और यह परीक्षा बहुत जटिल और कठिन होती थी। इस प्रकार से यह गुरुकुल लगभग 1000 वर्ष तक उच्च शिक्षा देने का सर्वोत्कृष्ट अध्ययन केंद्र रहा। किंतु 410 ईस्वी तक यह गुरुकुल अपना अस्तित्व लगभग खो चुका था।

दूसरा प्रसिद्ध गुरुकुल था नालंदा। यह गुरुकुल पटना शहर के समीप स्थित था। इस गुरुकुल का निर्माण सम्राट अशोक ने कराया था। और यह गुरुकुल 450 ईसवी के इर्द-गिर्द शिक्षा का विख्यात केंद्र बन गया था। सातवीं शताब्दी में इस गुरुकुल का महत्व और वैभव चरमोत्कर्ष पर था। इस गुरुकुल में बहुत बड़े-बड़े कक्ष होते थे जिनमें शिक्षा प्रदान की जाती थी, हालाँकि कुछ छोटे अध्ययन कक्ष भी होते थे। बहुत विशाल शिक्षकों व छात्रों के लिए आवास स्थान गुरुकुल के चारों ओर होते थे। विद्यालय/गुरुकुल का वातावरण पूर्णतया प्राकृतिक व सरोवरों से युक्त हुआ करता था। इस गुरुकुल में हजारों विद्यार्थियों और सैकड़ों शिक्षकों के लिए बहुत विशाल पुस्तकालय था और यह पुस्तकालय कई भवनों में था और कई मंजिल के भवनों में था। पुस्तकालय भवन नौ मंजिल का था। इस गुरुकुल में प्रशासन कुलपति के आधीन था और इस कुलपति का चयन संघ के सदस्यों द्वारा होता था। कुलपति बनने के लिए व्यक्ति को अच्छे चरित्र वाला, बहुत ही विद्वान और सीनियर होना जरूरी था। शीलभद्र एक कुलपति काफी विख्यात हैं। कुलपति के कार्य में उनकी सहायता करने के लिए शिक्षा समिति और प्रबंध समिति नाम की दो समितियाँ थी। शिक्षा समिति प्रवेश, पाठ्यक्रम का निर्धारण और शिक्षकों में कार्य वितरण करने के कार्य देखती थी। जबकि प्रबंध समिति साधारण प्रबंधन की व्यवस्था, रहने, खाने-पीने, निर्माण व मरम्मत, व आवासों का वितरण आदि कार्य करती थी। इस गुरुकुल में विद्यार्थियों को निशुल्क शिक्षा दी जाती थी और उनको खाना-पीना, रहना, कपड़े व चिकित्सा सुविधा भी फ्री दी जाती थी। इस गुरुकुल की धन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति इस गुरुकुल के पास करीब 200 सर्वसम्पन्न गाँवों की आमदनी से होती थी। ये गाँव गुरुकुल को दान में प्राप्त हुए थे। इसके अलावा राजा और जनता भी खुले दिल से, स्वतंत्रता पूर्वक व दिल से भी दान देते थे। इस गुरुकुल में दाखिला पाने की आयु कम से कम 20 वर्ष थी। जो विद्यार्थी इस गुरुकुल में प्रवेश के इच्छुक होते थे उनको गुरुकुल के गेट के पास द्वार-पंडित द्वारा ली जाने

वाली परीक्षा को उत्तीर्ण करना जरूरी था। दाखिला पाना बहुत कठिन था। दाखिले में प्रतिस्पर्धा बहुत थी। दो या तीन परसेंट रिजल्ट प्रवेश परीक्षा का होता था। समस्त भारत और दूर-दूर के देशों के छात्र भी प्रवेश पाने के लिए कोशिश करते थे। चीन, कोरिया, तिब्बत, व पोखरा आदि जगह के विद्यार्थी भी प्रवेश लेने आते थे। इस गुरुकुल में पाठ्यक्रम बहुत वृहद और सार्वभौमिक था। यहाँ पर बौद्ध धर्म के महायान का अध्ययन प्रमुख रूप से होता था। किंतु वैदिक धर्म व जैन धर्म की शिक्षा का भी प्रबंध था। धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन, तीन वेद, वेदांग, पुराण, दर्शन, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, खगोल विज्ञान और चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। इस गुरुकुल में शिक्षा देने की विधियों में व्याख्यान, व्याख्या, और शास्त्रार्थ प्रमुख शिक्षा विधियाँ थी। गुरुकुल का नियम था कि रोजाना सौ व्याख्यान हो, प्रत्येक छात्र व्याख्यानों में उपस्थित हो, व्याख्यानों के अतिरिक्त छात्र संबंधित पुस्तकों का अध्ययन करें और उनकी व्याख्या करें। विद्यार्थियों के मध्य शास्त्रार्थ व वाद-विवाद भी कराया जाता था। शिक्षा कंठस्थ करने की क्रिया पर आधारित था। इस गुरुकुल में करीब एक सौ विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थी पूरे दिन-रात, सिर्फ सोने के समय को और दैनिक आवश्यक शौच आदि क्रियाओं को करने के अतिरिक्त, अध्ययन में जुटे रहते थे। इस गुरुकुल में 3000 से लेकर 10000 छात्रों तक के होने के विचार व्यक्त किए गए हैं। अनुशासन की यहाँ पर कोई समस्या ही नहीं थी क्योंकि हर छात्र को गुरुकुल के नियमों का पालन करना अनिवार्य था, छात्र और शिक्षकों में आत्मीयता थी व सौहार्दपूर्ण संबंध थे, छात्र आपस में प्रेम व सहयोग रखते थे और बड़ों का आदर करते थे तथा स्वयं स्व-अनुशासित रहते थे। इस प्रकार छात्रों का जीवन पूर्णतया संयमपूर्ण, सात्विक तथा आदर्श था। इस गुरुकुल में बहुत ही उच्च कोटि के, पवित्र जीवन के लिए एवं नियमित व नियन्त्रित जीवनयापन के लिए प्रसिद्ध व्यक्ति शिक्षक होते थे। इन प्रमुख शिक्षकों में शामिल थे: नागार्जुन, वसुबंधु, आर्य देव, आर्य असंग, धर्मकीर्ति, धर्मपाल, चंद्रपाल, प्रभामित्र, जिनमित्र, जननमित्र और शीलभद्र। ये सभी शिक्षक शिक्षण कला, व्याख्यान व व्याख्या करने में बहुत ही कुशल होते थे। इसमें 1000 से अधिक शिक्षक थे। शिक्षकों में तीन वर्ग हुआ करते थे। जो शिक्षक 50 ग्रंथों के सूत्रों व शास्त्रों पर अधिपत्य रखते थे उन की संख्या करीब 10 होती थी; इसी प्रकार 500 शिक्षक ऐसे थे जो 30 ग्रंथों के सूत्रों के व्याख्यान व व्याख्या करने में निपुण थे और करीब 1000 शिक्षक ऐसे होते थे जिनका अधिपत्य 20 ग्रंथों को पढ़ाने व व्याख्या करने में था। अध्ययन काल ब्रह्म मुहूर्त में घंटा बजते ही शौच आदि कर्मों से निवृत्त होकर आरम्भ होता था। विद्यार्थी विद्या अध्ययन में लग जाते थे। साथ ही सुबह और शाम टहलना सभी के लिए अनिवार्य था। इस गुरुकुल में गुरु और शिष्य बहुत ही अधिक मर्यादा में, व्यवस्थित ढंग से और आदर्श जीवन क्रियाएं करते हुए रहते थे। और इसी का परिणाम यह था कि इस गुरुकुल के 700 वर्षों की अवधि में एक भी अपराध की घटना नहीं हुई और न ही किसी विद्यार्थी को दंडित किया गया। किंतु इस विश्वविख्यात गुरुकुल की प्रसिद्धि भी 13 वीं शताब्दी के प्रारंभ में

बख्तियार खिलजी द्वारा आक्रमण किए जाने, उसके द्वारा भवनों को जला दिए जाने और विद्यार्थियों व शिक्षकों का कत्ल किए जाने के कारण नष्ट हो गई। (सिंह, 2004)

तीसरा प्रमुख गुरुकुल वलभी नामक था। यह गुरुकुल काठियावाड़ नगर के समीप था। इस गुरुकुल की स्थापना नालंदा गुरुकुल के प्रतिस्पर्धा स्वरूप हुई थी। किंतु इस गुरुकुल ने भी देश-विदेश में प्रसिद्धि प्राप्त की और 12वीं शताब्दी तक यह गुरुकुल शिक्षा का एक प्रमुख केंद्र रहा। इस गुरुकुल में भी बहुत बड़े-बड़े भवन व विशाल पुस्तकालय थे। यहाँ की धन संबंधी जरूरतों की पूर्ति गुरुकुल से जुड़े हुए बहुत से गाँवों से प्राप्त आमदनी थी। राजाओं द्वारा धन संबंधी सहायता की जाती थी। और बहुत अधिक मात्रा में धन लोगों के द्वारा स्वेच्छा से इस गुरुकुल को दिया जाता था। इस गुरुकुल में दाखिला लेने के लिए एक दाखिला परीक्षा होती थी। और दाखिला तभी होता था जब विद्यार्थी इस परीक्षा में सफल हो जाए। इस गुरुकुल में धर्म की शिक्षा के साथ सांसारिक विषयों, जैसे अर्थशास्त्र, कानून, विधि, मेडिकल साइंस आदि की शिक्षा दी जाती थी। विशेष तौर से बौद्ध धर्म की शिक्षा यहाँ दी जाती थी। इस गुरुकुल में करीब 200 शिक्षक होते थे। उन सभी को रहने-सहने, खाने-पीने व आवास की व्यवस्था उपलब्ध कराई जाती थी। ये शिक्षक सादा जीवन और नियमित व नियंत्रित जीवन जीने के आदी थे। इस गुरुकुल में करीब 6000 विद्यार्थी होते थे। परीक्षा होती थी, किंतु मौखिक होती थी। अन्य गुरुकुलों से अलग इस गुरुकुल में परीक्षा में सफलता पाने के बाद विद्यार्थियों को स्नातक की उपाधि दी जाती थी। इस गुरुकुल का पतन 12 वीं शताब्दी में हो गया था।

चौथा प्रसिद्ध गुरुकुल था विक्रमशिला। यह गुरुकुल/विश्वविद्यालय मगध में गंगा के किनारे एक पहाड़ी के ऊपर बना था। इसका निर्माण राजा धर्मपाल ने आठवीं शताब्दी में किया था। इस गुरुकुल में भी बहुत बड़े-बड़े अध्ययन कक्ष, सभाकक्ष, शिक्षक आवास और छात्रों के लिए आवास थे। इस गुरुकुल में 6 द्वार थे। गुरुकुल में बहुत ही संपन्न व विशाल पुस्तकालय था जिसमें बहुत दुर्लभ पुस्तकें भी उपलब्ध थी और उनका ट्रांसलेशन किया जाता था। इस गुरुकुल में भी गुरुकुल के कार्य चलाने के लिए सामान्य प्रशासन और एकेडेमिक प्रशासन समितियां थीं। विश्वविद्यालय का प्रमुख शिक्षकों द्वारा चयनित किया जाता था। विश्वविद्यालय की गतिविधियों को संपन्न करने के लिए अनेक अन्य समितियां भी थी। एकेडेमिक प्रशासन में छः द्वार पंडित होते थे और उनकी एक काउंसिल होती थी। द्वार पर स्थित द्वार-पंडित उन विद्यार्थियों की परीक्षा लेते थे जो प्रवेश के इच्छुक होते थे। प्रवेश परीक्षा के उत्तीर्ण होने पर ही विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय में प्रवेश मिलता था। द्वार पर स्थित पंडित संबंधित विषय के प्रकांड विद्वान हुआ करते थे। इस गुरुकुल विश्वविद्यालय में बौद्ध धर्म, दर्शन, वैदिक धर्म, वैदिक दर्शन, कर्मकांड, तंत्रशास्त्र, भाषा, साहित्य, व्याकरण और पॉलिटिक्स की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षण सामूहिक होता था। करीब एक सौ आठ शिक्षक इस गुरुकुल में थे। 12 वीं शताब्दी में इस विश्वविद्यालय

में करीब 3000 छात्रों के होने की बताया गया है। अंत में एक परीक्षा पैनल होता था जो विद्यार्थियों की परीक्षा लेता था और इस परीक्षा में सफलता प्राप्त करने पर विद्यार्थियों को पाल राजाओं के द्वारा डिग्री व उपाधियां दी जाती थी। इस विश्वविद्यालय का पतन भी सन् 1203 में बख्तियार खिलजी द्वारा आक्रमण करके भवनों, पुस्तकालयों, छात्रों और शिक्षकों को मार डालने के कारण हुआ। (सिंह, 2004)

बौद्ध काल लगभग 600 ई. पूर्व से 1200 ई. पूर्व तक कहा जाता है। इस काल के पहले के वैदिककाल(धर्मकाल) का पतन हो चुका था और आध्यात्मिकता अप्रचलित हो गयी थी और वैदिक धर्म में सिर्फ कर्मकाण्ड और बाह्य आडम्बर रह गये थे।

(अल्तेकर,1973)के अनुसार: “बौद्ध शिक्षा पूर्णतः मठों से सम्बन्धित थी और उन लोगों के लिए उद्दिष्ट थी, जो संघ प्रवेश करते थे अथवा प्रवेश का उद्देश्य रखते थे।”

इस काल में शिक्षा केवल बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए ही नहीं बल्कि सभी लोगों के लिए भी सुलभ थी। शुरुआत में यह शिक्षा पूर्णतः धार्मिक थी। विद्यार्थियों को निम्नलिखित 10 आदेश दिये जाते थे, जिनका पालन करना उसके लिए अनिवार्य होता था; जीव-हत्या न करना, चोरी न करना, अशुद्धता से दूर रहना, असत्य न बोलना, मादक पदार्थों का सेवान न करना, वर्जित समय पर भोजन न करना, नृत्य, व संगीत और नाटकोंके पास न जाना, श्रृंगार की वस्तुओं का प्रयोग न करना, उँचे बिस्तर पर न सोना, सोने या चाँदी का दान न लेना। इस काल में प्रारम्भिक शिक्षा प्रारम्भ करने की आयु सामान्यतया 6 वर्ष थी और शिक्षा की अवधि भी 6 वर्ष थी। बच्चों को पहले 6 माह में सिद्धिरस्तु नाम की बालपोथी पढ़ायी जाती थी और 16 माह के पश्चात् पाँच विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी जिनमें निम्न निहित थे: शब्द विद्या, तर्क विद्या, चिकित्सा विद्या, आध्यात्म विद्या और शिल्प एवं कला विद्या। शिक्षण मौखिक था। अक्षरों को लिख कर उनका उच्चारण करवाया जाता था और बच्चा अनुकरण करता था। इसके बाद ही अन्य विद्याओं का ज्ञान कराया जाता था। लेकिन उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रवेश के नियम अत्यन्त कठिन थे। इसके लिए पहले आठ नियमों का पालन करने का निर्देश दिया जाता था: साधारण वस्त्र पहनना, वृक्षों के नीचे वास करना, भिक्षा माँगकर सात्विक भोजन ग्रहण करना, चोरी न करना, जीव-हत्या न करना, वर्जित समय पर भोजन न करना, अलौकिक शक्तियों का दावा न करना, स्त्री से यौन-सम्बन्ध स्थापित न करना, तथा औषधि के रूप में गो-मूत्र का सेवन करना। उच्च शिक्षा आरम्भ करने की आयु 12 वर्ष थी, और कुछ दशा में कम से कम आयु 20 वर्ष की थी।

धार्मिक पाठ्यक्रम भिक्षु एवं भिक्षुणियों के लिए निर्धारित था तथा लौकिक पाठ्यक्रम जनसाधारण के लिए निर्धारित था। इसमें धर्म, दर्शन, साहित्य, तर्कशास्त्र, न्यायशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, नक्षत्र

फल गणनाविद्या, खगोल विद्या, राज्य व्यवस्था, प्रशासन आदि का ज्ञान कराया जाता था। साथ में 18 शिल्पों में से एक का विशेष ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक था। छात्रों को शिक्षा सामूहिक रूप से दी जाती थी। विधि मुख्यतया मौखिक थी।(सिंह, 2004)

(मुकर्जी, 1951) के अनुसार हेनसांग ने कहा है:“शिक्षक सामान्य अर्थ को स्पष्ट करते हैं और सूक्ष्म विवेचन करके उन्हें पढ़ाते हैं। वे उन्हें क्रिया के लिए उद्दीप्त करते हैं और प्रगति के लिए कुशलता से उन्हें प्रवृत्त करते हैं। वे निष्क्रिय को निर्देशित करते हैं और प्रगति को उत्साहित करते हैं।”

अनुशासन पर अधिक बल दिया जाता था। गुरु और शिष्य दोनों ही सुसंगठित, मर्यादित एवं आदर्श जीवन व्यतीत करते थे।

(अल्तेकर, 1979) के अनुसार: “नव शिष्य और उसके गुरु के मध्य सम्बन्धों का स्वरूप पुत्रानुरूप था। वे परस्पर सम्मान, विश्वास और प्रेम से आबद्ध थे।”

खास बात थी कि उस समय स्त्रियों को शिक्षा में स्थान नहीं दिया गया था। हालांकि बाद में महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में प्रवेश करने की अनुमति दे दी थी और उनके लिए अलग से मठों आदि की व्यवस्था भी की थी।

व्यावसायिक शिक्षाभिक्षुओं और जनसाधारण के लिए भी थी। विभिन्न हस्तकलाओं में सूत कातना, कपड़ा बुनना और वस्त्र सीना आदि थे और ललित कलाओं में मूर्तिकला और चित्रकला की आदि शिक्षा दी जाती थी।

अति का सर्वत्र त्याग करते हुए अष्टांग-मार्ग का अनुसरण करते हुए निर्वाण प्राप्ति की ओर अग्रसर होना चाहिए; सम्यक दृष्टि के लिए चार आर्य सत्यों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होना; सम्यक दृष्टि प्राप्त करने पर ही मानव निर्वाण हेतु प्रयास करने का संकल्प किया जाना; सम्यक संकल्प द्वारा सांसारिक भोग विलास एवं सुखों की कामना का परित्याग करना; आत्म परिष्कार संकल्प का दूसरा मार्ग होना; सदैव सत्य-भाषण एवं असत्य बोलने का त्याग निर्वाण हेतु अत्यंत महत्व पूर्ण माना जाना; सम्यक कर्मशुभ कर्म करने को सदाचार का आधार मानना; मनुष्य को असदृत् प्रवृत्तियों को दमन तथा सदृत् प्रवृत्तियों के विकास का सदैव यत्न करवाना; बुद्ध के उपदेशों को स्मरण करना तथा मन, वचन व कर्म से उन उपदेशों को क्रियान्वित कराना; सम्यक समाधि मन को एकाग्र करके परमानन्द प्राप्त कराना; समाधि करवाना(शुद्ध विचारों में लीन रहने का प्रयास करना है तथा चार आर्य सत्यों में पूर्ण आस्था रखना; प्रसन्नता से उदासीन हो आंतरिक शांति का अनुभव करना है; साधक का सांसारिक दुखों से मुक्ति पाकर पूर्ण ज्ञान व निर्वाण का अधिकारी बनना) आदि बौद्ध कालीन शिक्षा की प्रमुख विशेषतायें थीं। (शिक्षाशास्त्र, 2016)

बौद्ध काल में सदाचार के निम्न दस नियमोंका पालन करवाया जाता था: सत्य बोलना, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, संग्रहवृत्ति का त्याग, चोरी न करना, सुगंधित पदार्थों का त्याग, कोमल बिछौने का त्याग, नाचने-गाने का त्याग, धन-स्त्री का त्याग, तथा बेसमय भोजन का त्याग। इनके पालन करने को नैतिक शिक्षा कहा जाता था।

इनके अतिरिक्त निम्न बातों का पालन भी करवाया जाता था: माता-पिता का आज्ञा पालन, गुरुजनों के प्रति श्रद्धा, सत्पात्रों को दान, प्रेम व उदारता का व्यवहार, कोई नशा न करना तथा प्राणी-मात्र पर दया करना। (शिक्षाशास्त्र, 2016)

भारत में लगभग 550 वर्ष के मुस्लिम शासन काल विभिन्न शासकों ने अपनी-अपनी आकांक्षाओं और परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण किया था। बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा मकतबों में दी जाती थी। (सिंह, 2004)

(केई, 1942) के अनुसार: “प्रायः मस्जिद से जुड़ा हुआ मकतब प्राथमिक विद्यालय है जिसका मुख्य कार्य बालकों को कुरान के उन अंशों की शिक्षा देना था, जिन्हें अन्य धार्मिक कार्यों और उनकी आस्थाओं को पूर्ण करने की दिशा में मन से जानने की अपेक्षा की जाती थी।”

मदरसों में उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी और मदरसे मस्जिद से जुड़े होते थे।

(केई, 1942) के अनुसार: “मदरसे उच्च शिक्षा के स्कूल थे। वे सामान्यतया मस्जिदों और दरगाहों से जुड़े थे। उनमें से कुछ विश्वविद्यालय के स्तर के अनुरूप उन्नति कर गये थे।”

मदरसों का पाठ्यक्रम अत्यन्त विस्तृत था और अध्ययन अवधि 10 से 12 वर्ष थी। इसमें अरबी एवं फारसी भाषाओं के साहित्य एवं व्याकरण, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र, कानून, ज्योतिष, गणित, इतिहास, भूगोल, यूनानी चिकित्सा और कृषि आदि विषय प्रमुख थे। अनिवार्य रूप से इस्लाम धर्म की शिक्षा दी जाती थी; रटने पर विशेष बल दिया जाता था; भाषण पद्धति से पढ़ाया जाता था।

(जफर, 1936) के अनुसार: “शिक्षकों का समाज में उच्च स्थान था और यद्यपि उनका वेतन अल्प था तथापि उनको सार्वजनिक सम्मान और विश्वास प्राप्त था।”

मदरसों में अलग-अलग विषयों के अलग-अलग शिक्षक शिक्षण कार्य किया करते थे; गुरु और शिष्य के सम्बन्ध अति मधुर थे; आर्थिक व्यवस्था का दायित्व राज्य का नहीं था; किसी भी प्रकार की व्यवस्थित परीक्षा प्रणाली का प्रचलन नहीं था; कक्षा-उन्नति के लिए छात्र के सम्पूर्ण वर्ष के कृत कार्य के आधार पर शिक्षक अपनी मर्जी से छात्र को तरक्की दे देता था; किसी विषय में गहन अध्ययन/ प्रतिभा प्रदर्शित करने वाले छात्रों को सत्कार किया जाता था। स्त्रियों की शिक्षा का उल्लेख नहीं मिलता है। इस काल में सैनिक शिक्षा पर बहुत अधिक बल दिया जाता था। हालांकि चिकित्सा शिक्षा भी इस काल में थी। ललित कलाओं और हस्त कलाओं की विशेष

प्रगति हुई जिनमें निम्न निहित थे: नृत्य, संगीत, चित्रकला, वास्तुकला, हाथी दाँत का काम, रेशम एवं जरी का काम, आभूषण निर्माण और मखमल बनाना आदि।(सिंह, 2004)

विवेकानन्द ने शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखने-परखने तथा उसे जीवन में उतारने के लिए व्यावहारिकता का रूप देने का कार्य किया था और इसी कारण उसे 'नव्य वेदान्त' कहा गया। नव्य वेदान्त दर्शन कहता है कि यह ब्रह्मण्ड ब्रह्म द्वारा निर्मित है और ब्रह्म तथा यह वस्तु-जगत दोनों वास्तविक हैं। और इस प्रकार आत्मा में ब्रह्म का अंश मौजूद है। मानव का अन्तिम उद्देश्य आत्मानुभूति है, जो कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, राजयोग द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। विवेकानन्द ने नव वेदान्त का शिक्षा में भी अनुप्रयोग किया यह मानते हुये कि शिक्षा केवल सूचनाओं को प्राप्त कर रट लेना ही नहीं है बल्कि शिक्षा का प्रथम उद्देश्य अन्तर्निहित पूर्णता को प्राप्त करना है। उनका कहना था कि सांसारिक तथा आध्यात्मिक सभी ज्ञान मनुष्य में पहले से ही होता है। व्यक्ति का सिर्फ आवरण उतारना होता है और इस आवरण को उतारने की शिक्षा ही सबसे महत्वपूर्ण और प्रथम शिक्षा है। उन्होंने शारीरिक विकास पर भी बल दिया क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वास्थ्य दिमाग रह सकता है। मानसिक विकास से उनका आशय था कि शिक्षा ऐसी हो जो मनुष्य को अपने पैरों पर खड़ा होने या आत्मानिर्भर बनने योग्य बनाये। उनका विश्वास था कि नैतिक और आध्यात्मिक विकास द्वारा ही मानव बनता है और महान नागरिक बनते हैं। उन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन करने पर बल दिया व शिक्षा के उद्देश्यों में इसे सम्मिलित करने के लिये कहा और कहा कि शिक्षार्थियों में स्वयं पर विश्वास, श्रद्धा एवं आत्म-त्याग की भावना विकसित की जानी चाहिए। उन्होंने धार्मिक विकास करने को शिक्षा का उद्देश्य इसलिए कहा क्योंकि इससे शिक्षार्थी अपने जीवन को पवित्र बना सकते हैं और आज्ञा पालन, समाज सेवा एवं महापुरुषों व सन्तों के अनुकरणीय आदेशों को अपनाने की क्षमता विकसित कर सकने में सक्षम हो सकें। लेकिन साथ-ही-साथ उन्होंने सांसारिक विकास की उपेक्षा नहीं की। इसीलिये इन दोनों पक्षों के विकास हेतु सांसारिक विकास हेतु पाठ्यक्रम में भाषा, इतिहास, भूगोल, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, गणित, विज्ञान, गृहविज्ञान, कृषि, तकनीकी व उद्योग कौशल सम्बन्धी विषय तथा खेलकूद, व्यायाम, समाज सेवा, राष्ट्रीय सेवा संघ संबंधी क्रियाओं को रखा तथा आध्यात्मिक विकास हेतु साहित्य दर्शन, धर्मशास्त्र व नीतिशास्त्र विषयों के साथ भजन, कीर्तन, सत्संग एवं ध्यान जैसी क्रियाओं को शिक्षा हेतु रखा। यह पाठ्यक्रम सर्वथा आधुनिक था। उन्होंने फिजिक्स हेतु प्रत्यक्ष, अनुकरण, व्याख्यान, निर्देशन, विचार-विमर्श और प्रयोग विधियों को सुझाया तथा आध्यात्मिक ज्ञान हेतु अध्ययन, मनन, ध्यान, और मोक्ष विधि को सुझाया। वे गुरु-गृह प्रणाली को शिक्षा के लिये उचित मानते थे। (शिक्षाशास्त्र, 2016)

टैगोर का शैक्षिक दर्शन आदर्शवादी था और आधार भारतीय संस्कृति था। शिक्षा को वे मानव मात्र की एकता का सहायक मानते थे और इस कारण से उन्होंने पाश्चात्य शिक्षा पद्धति को

दोषपूर्ण व उसका अनुकरण करना देश के लिए नुकसानदायक बताया। उन्होंने अपने शिक्षा-दर्शन के अनुरूप ही 'शान्ति निकेतन' में शिक्षा की व्यवस्था की। उनके अनुसार पाठ्यक्रम में अनेक विषयों का समावेश होना चाहिये ताकि छात्र अपनी रुचि एवं अभिवृत्ति के अनुसार विषयों का चयन कर सकें। शान्ति निकेतन में शैक्षिक विषयों के अतिरिक्त चित्रकला, नृत्य, संगीत, नाट्य, काष्ठकला, उद्योग आदि अनेक विषयों का शिक्षण भी विशेषज्ञों द्वारा दिये जाने की व्यवस्था थी। माध्यम मातृभाषा रखा। उनका मत था कि शिक्षक अपने व्यवहार, चरित्र, विद्वता, एवं कौशल के माध्यम से शिक्षार्थियों के लिए अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करते हैं। अनुशासनहीनता के लिए शिक्षक का ही नैतिक उत्तरदायित्व मानते थे। (शिक्षाशास्त्र, 2016)

जीन जैक्स रूसो एक महान दार्शनिक व शिक्षाविद् थे। उनके अनुसार प्रत्येक वो वस्तु अच्छी है जो प्रकृति से प्राप्त होती है। सदाचार, उचित-अनुचित की बुद्धि, न्यायप्रियता, श्रद्धा और करुणा को रूसो ने आत्मा के नेचुरल गुण बताया हैं। उनका कहना था कि शिक्षा के प्रमुख तीन साधन होते हैं:- पहला प्रकृति, दूसरा मानव, और तीसरा पदार्थ। बालक की शिक्षा में इन तीनों का ही समावेश होना जरूरी है। पदार्थ से उनका आशय था कि व्यक्ति के अपने परिवेश में पाए जाने वाले पदार्थों से शिक्षा ग्रहण करना। इस प्रकार से शिक्षा ग्रहण करने से एक ओर तो मनुष्यों से शिक्षा मिलती है, और दूसरी ओर पदार्थों से शिक्षा मिलती हैं, और तीसरी ओर प्रकृति से बच्चे शिक्षा प्राप्त करते हैं। रूसो ने कहा है कि पौधे पोषण से, और मनुष्य शिक्षा से बढ़ते हैं। शिक्षा के लिए बच्चों को कठोर परिश्रम की आवश्यकता होती है। उद्योग, हस्तकला, मस्तिष्क और हृदय की शिक्षा के समर्थक रहे हैं रूसो। रूसो की शिक्षा बुनियादी शिक्षा का समर्थन करती है। रूसो पुस्तकों द्वारा शिक्षा दिये जाने के खिलाफ थे। उनका मानना था कि पुस्तकें बालक और वस्तुओं के बीच में आ जाती हैं, और बच्चों को उनके अनुभवों द्वारा सीखने में विघ्न पैदा करती हैं। वह मानते थे कि बच्चे जन्म से ही शुद्ध और पवित्र होते हैं। शिक्षक का काम सिर्फ बच्चों की देखभाल करना है। प्राकृतिक परिवेश में बच्चे स्वयं अपनी शक्तियों का विकास करते हैं। उनका कहना था कि बच्चों को अनुभव से सिखाना चाहिए, किताबी शिक्षा से नहीं। बारह वर्ष तक बच्चों को किसी प्रकार की शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए। मानव की प्राकृतिक आवश्यकता की पूर्ति प्रकृति के साधन से करना चाहिये। पुस्तकों या शब्दों के द्वारा मिले हुए ज्ञान की तुलना में स्वयं क्रिया करके सीखा हुआ ज्ञान दीर्घकाल तक रहता है। इसलिए बच्चों को रटने-रटाने के द्वारा शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए। उनका कहना था बालक की विवेक-शक्ति का विकास करना चाहिए, नकि स्मरण शक्ति का विकास शिक्षा के द्वारा करना चाहिए। (पाठक, 2012)

गांधी उस समय की भारतीय शिक्षा पद्धति से अत्यंत असंतुष्ट थे। उन्होंने उस समय की शिक्षा प्रणाली की विभिन्न सभाओं में तथा विभिन्न प्रकार से आलोचना की थी। उन्होंने 1937 में

भारतीय शिक्षा को बदलने का आवाहन किया और इस सम्बन्ध में अपनी पत्रिका "हरिजन" में कई लेख लिखे।

स्वराज्य आंदोलन को मोहनदास करमचंद गांधी (जिन्हें महात्मा गांधी या गांधी के नाम से भी गांधी जाना जाता है) का नेतृत्व मिला गया था। गांधी की प्रेरणा से देश में राष्ट्रीयता की लहर चल पड़ी थी। महात्मा गांधी ने स्पष्ट कहा था कि उनके राष्ट्रीय आंदोलन का एक प्रमुख अंग शिक्षा-सुधार है।

गांधी के शिक्षा संबंधी विचार किताबी ज्ञान पर आधारित नहीं थे। उनका मत था कि सच्ची शिक्षा माता-पिता ही दे सकते हैं। अतः उन्होंने अपने आश्रम में अपने को पिता के स्थान पर रखकर कार्य आरंभ किया। उनकी धारणा यह भी थी कि सच्ची शिक्षा का माध्यम चरित्र निर्माण है, अतः टालस्टॉय आश्रम की तरह चरित्र निर्माण पर बल दिया।

गांधी को राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना की आवश्यकता महसूस हुई। परिणाम स्वरूप महाराष्ट्र में तिलक विद्यापीठ, बिहार में बिहार विद्यापीठ, उत्तरप्रदेश में काशी विद्यापीठ और गुजरात में गुजरात विद्यापीठ स्थापित कर राष्ट्रीय आवश्यकता की पूर्ति में समर्थ नागरिकों का निर्माण करने का संकल्प लिया गया। इन विद्यापीठों के कार्य में शिक्षण योजनाएँ इस प्रकार बनाई गईं कि इसके प्रत्येक कार्य से छात्रों में देश-प्रेम तथा राष्ट्रीयता की प्रेरणा प्राप्त हो। पाठ्यक्रम में भारतीय साहित्य, भारतीय संस्कृति, भारतीय सभ्यता और भारतीय इतिहास को प्रमुख स्थान दिया गया। शिक्षक प्रायः स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी थे। इन शिक्षकों के आचरण में सच्चरित्रता, वाणी में तेजस्विता, व्यवहार में कर्म, व मन में देशप्रेम व्याप्त था। शिक्षण व्यवसाय इन शिक्षकों के लिए जीविका का आधार न था। वे शिक्षा में क्रांति लाना चाहते थे। अतः उन्होंने नयी शिक्षा का विस्तृत एवं महत्वपूर्ण विचार देश को दिया।

विश्व के शिक्षाविद्वानों ने शिक्षा को इस प्रकार व्यक्त किया है: प्रत्येक बालक में जन्मजात (विशेषतः वंशानुक्रम प्रभावित) कुछ शक्तियाँ व प्रकृतियाँ होती हैं, जिनसे और भौतिक व सामाजिक वातावरण (नियन्त्रित व अनियन्त्रित) के प्रभाव से बच्चों का विकास होता है। संकुचित रूप से, एक पूर्व नियोजित योजना के अनुसार बालक के सामने एक विशेष प्रकार के नियन्त्रित वातावरण को प्रस्तुत करके एक निश्चित ज्ञान को निश्चित विधि द्वारा निश्चित काल में समाप्त करना शिक्षा है। व्यापक दृष्टि से, शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली क्रिया है। किन्तु, गांधी ने शिक्षा का तात्पर्य इस प्रकार व्यक्त किया है—“बालक और मनुष्य के शरीर, मन और अंतरात्मा में पाए जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का विकास है।”

बाइस तथा तेइस अक्टूबर 1937 की 'हरिजन पत्रिका' का उल्लेख करते हुए (शिक्षाशास्त्र, 2016) ने कहा है कि गांधी जी ने कहा था:—“वर्तमान शिक्षा पद्धति अपव्ययात्मक होने के साथ हानिकारक भी है। इसे प्राप्त करने के पश्चात अधिकांश लड़के अपने माता-पिता तथा अपने

पैतृक व्यवसाय से दूर हो जाते हैं। वे शहरी जीवन के तौर-तरीके तथा विभिन्न बुरी आदतें सीख लेते हैं। उनकी रटी-रटाई जानकारी वस्तुतः शिक्षा नहीं है।” प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी अपनी योजना प्रस्तुत करते हुए गांधी ने कहा “मैं चाहता हूँ कि सम्पूर्ण शिक्षा किसी हस्तकला अथवा उद्योग के माध्यम से दी जाए।” उनके प्रस्ताव के अनुसार एक सात वर्षीय शिक्षा योजना बनायी गयी जिसके अन्तर्गत तकली सम्बन्धी क्रियाओं के माध्यम से बुनाई, रंगाई तथा डिजाइन आदि सम्बन्धी व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता था।

प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत स्वच्छता, स्वास्थ्य-विज्ञान, व आहार सम्बन्धी मूल सिद्धान्त; अपना कार्य स्वयं करना; घर पर माता-पिता की सहायता करना आदि बातें सम्मिलित की गयीं।

बाइस तथा तेइस अक्टूबर 1937 की ‘हरिजन पत्रिका’ का उल्लेख करते हुए (शिक्षाशास्त्र, 2016) ने व्यक्त किया है कि गांधी जी ने कहा था कि: “हमें अपने बच्चों को अपनी सभ्यता, अपनी संस्कृति तथा अपनी राष्ट्रीयता की सही प्रकृति के प्रतिनिधि बनाना है...इसके लिए हमारे पास अहिंसा पर आधारित इस शिक्षा योजना के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है।”

(ठक्कर, 2012) के अनुसार गांधी की पुस्तकों में नई तालीम के निम्न तत्वों को स्थान दिया गया:-

1. नई तालीम से हममें आशावाद का संचार होना चाहिए।
2. सारी पढ़ाई किसी मूल उद्योग धंधे से संबंधित होना चाहिए।
3. हाथों द्वारा मस्तिष्क का विकास किया जाना चाहिए।
4. शिक्षा से भले और बुरे के मध्य अंतर करना सिखाना चाहिए।
5. नई तालीम को एक नयी सामाजिक व्यवस्था को प्रसारित करना चाहिए।
6. आरंभ से ही बच्चों को अंग्रेजी सिखाने से उन पर अनावश्यक बोझ बढ़ता है।
7. नई तालीम की जड़ें भारतीय संस्कृति और लोगों के जीवन में होनी चाहिए।
8. भारत कभी भी धर्मविहीन नहीं होगा। सभी धर्मों और मतों में सदभाव और एकता होनी चाहिए।
9. नई-तालीम का आध्यात्मिक पक्ष यह है कि ज्ञान और कर्म एक है।
10. स्वराज का अर्थ, सत्ता परिवर्तन नहीं अपितु राजनैतिक नियंत्रण बदलने से है।
11. ब्रह्मविद्या और उद्योगों को नई शिक्षा में शामिल करना होगा।
12. नई तालीम को सरकार निरपेक्ष होना चाहिए।

(शिक्षाशास्त्र, 2016) के अनुसार, इस ऐतिहासिक सम्मेलन में निम्न चार प्रस्ताव पारित किए गए: राष्ट्र स्तर पर सात-वर्षीय निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा आयोजित की जाए; शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो; इन सात वर्षों में शिक्षा-प्रक्रिया किसी शारीरिक तथा उत्पादनात्मक कार्य पर

आधारित होनी चाहिए तथा बच्चों की अन्य योग्यताओं का विकास/ प्रशिक्षण यथासम्भव बालकों के परिवेश से सम्बन्धित वस्तुओं/स्थितियों/ व्यक्तियों से हो, तथा यह शिक्षा-योजना अध्यापकों के पारिश्रमिक स्वयं वहन करने /सकने में समर्थ हो। इस सम्मेलन की सिफारिशों के आधार पर विस्तृत पाठ्यचर्या निर्मित करने का कार्य एक समिति को दिया गया, जिसेबाद में डॉ. जाकिर हुसैन समिति के नाम से जाना गया। डॉ. जाकिर हुसैन समिति ने अपनी रिपोर्ट अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन के सभापति महात्मा गांधी को वर्धा में 2 दिसम्बर 1937 को प्रस्तुत की। डॉ. जाकिर हुसैन समिति द्वारा प्रस्तुत बुनियादी तालीम की योजना ही सात-वर्षीय शिक्षा का आधार बनी।सुझाव थाएक बुनियादी हस्तकला सहित आठ विषयों के अध्ययन का । सभी विषय का अध्ययन अनिवार्य था और इनके उद्देश्य वगैरह निम्न थे: हस्तकला शिक्षण/ छात्रों को इस योग्य बनाना कि चुनी गई हस्तकला सम्बन्धी संपूर्ण पाठ्यचर्चा के अध्ययन द्वारा वे उसे व्यवसाय के रूप में अपना सकें। मातृ-भाषा द्वारा शिक्षण।इससे बालकों के चिन्तन में परिशुद्धता, विचारों में सुस्पष्टता तथा सामाजिक धरोहर में निहित नैतिक मूल्यों पर आधारित सामाजिक शिक्षा में मातृ-भाषा अनिवार्य समझी गयी थी। सात-वर्षीय अध्ययन के बाद छात्रों में वातावरण सम्बन्धी घटनाओं, व्यक्तियों तथा पदार्थों में आत्म-विश्वास पूर्वक तथा स्वाभाविक ढंग से वार्तालाप करने की क्षमता विकसित होना; दैनिक जीवन से सम्बन्धित किसी भी विषय पर प्रासंगिक, सुसंगत तथा बोधगम्य ढंग से बोलने की क्षमता विकसित होना; सामान्य कठिन स्तर के समाचारपत्र, पत्रिकाओं का गतिपूर्वक मौन रूप से पढ़ने की क्षमता विकसित करना; गद्य तथा पद्य की सुस्पष्ट, लय से तथा आनन्दपूर्वक ढंग सस्वर पढ़ने की क्षमता विकसित होना; शब्दकोषों, संदर्भग्रन्थों, पुस्तकों की विषय-सूची के प्रयोग करने तथा पुस्तकालय का उपयोग करने की क्षमता विकसित होना; शुद्ध एवं स्वच्छलिखने की क्षमता विकसित होना; स्वच्छ दैनिक जीवन की घटनाओं को सरल तथा स्पष्ट रूप में लिखने की क्षमता विकसित होना; सरल प्रकार के व्यावसायिक-पत्र तथा व्यक्तिगत-पत्र लिखने की क्षमता विकसित होना; तथा प्रसिद्ध लेखकों के बारे में जानकारी विकसित होना तथा उन लेखकों की रचनाओं के अध्ययन में रुचि विकसित होना।

इसी प्रकार, गणित-शिक्षण के दो उद्देश्य थे: हस्तकला, परिवार तथा समुदाय के जीवन से सम्बन्धित सामान्य अंक गणितीय तथा ज्यामितीय प्रश्नों के फटाफट हल करने की क्षमता का विकास करना तथाबही-खाते आदि को बनाने का ज्ञान होना। (शिक्षाशास्त्र, 2016)

गणित की शिक्षा में जोड़, घटाना, गुणा, भाग, भिन्न, दशमलव, इकाई विधि, ब्याज, क्षेत्रमिती,ज्यामिति तथा बही-खाते के प्रारम्भिक सिद्धांत का ज्ञान प्रदान करना निहित था। (शिक्षाशास्त्र, 2016)

(शिक्षाशास्त्र, 2016) ने व्यक्त किया है कि सामाजिक अध्ययन की शिक्षा द्वारा छात्रों में निम्न विकास करना निहित था: इतिहास भूगोल, नागरिक शास्त्र, सामयिक घटनाओं तथा संसार के

विभिन्न धर्मों के श्रद्धापूर्वक अध्ययन कराना; मानव की प्रगति, विशेषतौर से भारत के बारे में, व्यापक रूचि विकसित करना; अपने स्थानीय सामाजिक तथा भौगोलिक वातावरण के विषय में सही ज्ञान प्राप्त करना तथा इनको सुधारने की भावना विकसित करना; मातृभूमि के प्रति प्रेम विकसित करना, उत्पन्न करना; देश का प्रेम, सत्य तथा न्याय के आधार पर विकास करने भावना उत्पन्न करना; नागरिक के अधिकारों एवं दायित्वों के प्रति चेतना विकसित करना; अच्छा सहयोगी तथा पड़ोसी बनने के लिए आवश्यक व्यक्तिगत तथा सामाजिक गुणों का विकास करना; तथा विश्व के विभिन्न धर्मों के प्रति सर्वधर्म समभाव विकसित करना। इसके लिये निर्देश थे कि सामाजिक अध्ययन का शिक्षण छात्रों के परिवेश तथा उसकी समस्याओं पर आधारित होना चाहिए और इसके द्वारा छात्रों में यह जानने की इच्छा बनायी जाये कि विभिन्न मानव आवश्यकतायें किन-किन बातों से होती हैं।

सामान्य विज्ञान शिक्षण इसलिये रखा गया था ताकि छात्र प्रकृति के प्रति तार्किक, तर्कनायुक्त तथा उसके चाहने वाला दृष्टिकोण निर्मित करें; सही अवलोकन तथा प्रयोग द्वारा अनुभव के परीक्षण की आदतें डालें; प्राकृतिक घटनाओं में निहित महत्वपूर्ण वैज्ञानिक सिद्धान्तों को समझें तथा विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान का मानव सेवा हेतु प्रयोग करने की क्षमता का विकास कर सकें; तथा महान वैज्ञानिकों के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी हासिल करें ताकि सत्य के प्रति उनके द्वारा किए गए त्याग को छात्र पर वांछनीय प्रभाव पड़ सके। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सामान्य विज्ञान विषय में निम्नलिखित प्रकरण रखे गये थे: प्रकृति अध्ययन (अर्थात्, वातावरण के पशुओं, फसलों तथा पौधों सम्बन्धी ज्ञान; ऋतु परिवर्तन तथा इनका पौधों, पशुओं, पक्षियों एवं मनुष्य की क्रियाओं पर प्रभाव, विभिन्न ऋतुओं की फसले का ज्ञान देने के लिये); वनस्पति शास्त्र (अर्थात्, पौधों के विभिन्न अंग तथा उनके कार्य: अंकुरण, वृद्धि तथा प्रजनन की प्रक्रियाएं; विद्यालय-उद्यान तथा खेतों के कार्य जिससे छात्र नमी, प्रकाश तथा ताप के प्रभाव विभिन्न प्रकार की खाद तथा बीजों के गुण आदि समझाने के लिये); प्राणी-विज्ञान (अर्थात्, मनुष्य के मित्र तथा शत्रु के रूप में कीटाणुओं, पक्षियों तथा सरीसृपों का बोध कराने के लिये); शरीर विज्ञान (ताकि छात्र मानव शरीर के विभिन्न अंग तथा उनके कार्य को समझ सकें); स्वास्थ्य विज्ञान (इसके अन्तर्गत वैयक्तिक स्वास्थ्य, दातों, जीभ, नाखून, नेत्र, बाल, नाक, त्वचा तथा वस्त्रों की सफाई, घर तथा गाँव की सफाई, स्वास्थ्य रक्षा, मल इत्यादि का निवर्तन, शुद्ध जल, जल-शोधन में पेड़ों का योगदान, सही श्वसन-क्रिया, स्वच्छ तथा अस्वच्छ आहार, सन्तुलित आहार, प्राथमिक चिकित्सा तथा सामान्य औषधियां, सामान्य संक्रमण, संसर्गज रोग तथा उनकी रोकथाम आदि का ज्ञान कराना निहित था); व्यायाम (इसके अन्तर्गत खेल कूद, देशी व्यायाम आदि कराना निहित था); रसायन शास्त्र (इस के द्वारा छात्रों को वायु, जल, अम्ल, क्षार तथा लवणों का रसायन आदि का ज्ञान कराने का उद्देश्य निहित था); तारों की सहायता से दिशा तथा समय ज्ञात करने का ज्ञान देना; मानव कल्याण में योगदान देने वाले

महान वैज्ञानिकों आदि की कहानियाँ बताना। चित्रकलाविषय इसलिये प्रस्तावित किया गया था ताकि विद्यार्थियों को विभिन्न आकृतियों तथा रंगों के अवलोकन द्वारा नेत्र-प्रशिक्षण दिया जाये; उनमें आकृतियों सम्बन्धी स्मरण शक्ति विकसित हो सके; विद्यार्थियों में प्रकृति तथा कला के सौन्दर्य के प्रति प्रेम उत्पन्न हो सकें; विद्यार्थियों में अच्छी व सजावटी डिजायन बनाने की क्षमता का विकास हो सके; तथा पदार्थों के रेखाचित्र बना सकें।

यह भी प्रस्तावित किया गया था कि पहले चार वर्षों में चित्रकला शिक्षण पठन, हस्तकला एवं प्रकृति अध्ययन के द्वारा दिया जाए और अगले तीन वर्षों में विद्यार्थियों का डिजायनिंग, सजावट तथा ड्राईंग सिखायी जाये। संगीत शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों को सुन्दर गीत सिखाने के लिये तथाउनमें अच्छे संगीत के प्रति लगाव उत्पन्न करने के लिये सिर्फ सर्वोत्तम प्रेरणादायक गीतों का ही प्रयोग किया जाना चाहिए; समूह तथा कोरस गायन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए; स्वस्थ तथा प्रेरणादायक विषयों सम्बन्धी कलात्मक व्याख्या का प्रयोग भी किया जाना चाहिये। (शिक्षाशास्त्र, 2016)

हिन्दुस्तानी विषय की शिक्षा अनिवार्यरूपसे देकर बच्चों को लोकभाषा सम्बन्धी ज्ञान दिये जाने का प्रावधान था ताकि सभी देशवासियों से सहयोग कर सकें। यह शिक्षा इस तरह से दिये जाने का प्रस्ताव था कि छात्र यह अनुभव कर सकें कि यह भाषा हिन्दू तथा मुस्लिम सभ्यताओं का परस्पर अन्तःक्रिया का सर्वोत्तम रूप है तथा यह उनके विचारों एवं आकांक्षाओं के लिये सर्वोत्तम है। (शिक्षाशास्त्र, 2016)

बुनियादी शिक्षा के अन्तर्गत पाँचवी कक्षा तक सभी के लिये समान पाठ्यक्रम रखने और चौथे तथा पाँचवे वर्ष में बालिकाओं को गृह-विज्ञान का अध्ययन कराना तथा छठे तथा सातवें वर्ष में उनके लिए हस्तकला के स्थान पर उच्च गृह-विज्ञान पढ़ाने का प्रस्ताव था। (शिक्षाशास्त्र, 2016)

गांधी के द्वारा समर्थित बुनियादी शिक्षा या नई तालीम के बारे में (भावे, 2010) ने विचार व्यक्त किये हैं। उनका कहना था कि नई तालीम का मतलब है:— जो कल था वह आज नहीं है, और जो आज है वह कल नहीं रहेगा। यानी शिक्षण ऐसा जैसे कि नदी का बहता हुआ पानी।

शिक्षा में सरकारी मशीनरी का हस्तक्षेप बहुत हानिकारक है। शिक्षण पर वास्तव में सरकार का कोई हाथ नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार सरकार का विधि, कानून व न्याय विभाग स्वतंत्र होता है वैसे ही शिक्षण विभाग भी सरकार के नियंत्रण से स्वतंत्र होना चाहिए। अगर ऐसा नहीं होता है, तो स्थिति देश के लिए बहुत ज्यादा हानिकारक होगी। शिक्षण को बदलना होगा, तुरंत बदलना होगा। शिक्षण बदलने के लिए सभी को निश्चय करना होगा।

शिक्षण पद्धति को सरकारी मशीनरी के हस्तक्षेप से मुक्तकर जल्द से जल्द बदलना होगा। शिक्षण में एक क्रांति लानी होगी। बदली हुई शिक्षण पद्धति को ग्रामोन्मुख होना चाहिए। देहातों में विज्ञान पहुँचाना चाहिए। विद्यार्थियों को गाँव में अध्ययन करना चाहिए। विद्यार्थियों की ज्ञान

शक्ति और ग्रामों की श्रम शक्ति को एक करना चाहिए। सारी जनता को उद्योगशील व विचारशील बनाना चाहिए।(भावे, 2010)

शिक्षा देने का सबसे अच्छा उदाहरण है, श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण के द्वारा अर्जुन को दी गई शिक्षा।कृष्ण ने काम करते-करते अर्जुन को शिक्षा दी थी। कृष्ण गाय भी चराते थे, दूध भी गायों का निकालते थे, घर को गोबर से लीपते थे, मेहनत-मजदूरी करते थे, गुरु के घर जाकर आश्रम के कामों को करते थे, अर्जुन के घोड़ों की सेवा करते थे और साथ ही अर्जुन के सारथी भी थे। जबकि कृष्ण कम ज्ञानी नहीं थे। कृष्ण जगतगुरु थे। कृष्ण के द्वारा दिया गया ज्ञान विश्व में प्रसिद्ध है। तो जब कृष्ण यह सब शारीरिक श्रम चाहने वाले कर्म कर सकते हैं, ऐसे कर्म करना अपना कर्तव्य समझ सकते हैं, तो आजकल की शिक्षा प्राप्त लोग क्यों नहीं कर सकते। अवश्य कर सकते हैं और उन्हें करना भी चाहिए। और ऐसा करने से ही जगत में शिक्षा का सच्चा मूल्य स्थापित हो सकता है।(भावे, 2010)

हमें कृष्ण की तरहयानी काम करते-करते शिक्षा देनी चाहिए, बच्चों को स्वावलंबी बनाना चाहिए। बच्चे एक तरफ तो ब्रह्मविद्या का गायन करें और साथ ही शारीरिक श्रम करें। शारीरिक श्रम करने के अनेक उदाहरण हो सकते हैं, जैसे,झाड़ू लगाना, खेतों में मेहनत करना आदि। किंतु आज की शिक्षा में न तो ब्रह्मविद्या है और न ही उद्योग। और इसका परिणाम यह हुआ है कि सभी लोग विषय-भोग में जुट गए हैं, सभी लोग इंद्रियों के गुलाम हो गए, शिक्षित आराम तलब हो गए हैं। शिक्षित व्यक्तियों के मन में धन व ऐश्वर्य भोग आदि की लालसा लगातार बनी रहती है और उसी को उनके जीवन का उद्देश्य समझते हैं; हाथ भी बेकार हो जाते हैं, व आत्म ज्ञान के अभाव में बुद्धि ही बेकार हो जाती है।(भावे, 2010)

इस प्रकार से बदली हुई शिक्षा पद्धति में ब्रह्मविद्या और उद्योग दोनों बातें शामिल करनी होंगी।(भावे, 2010)

(भावे, 2010) ने कहा है कि शिक्षा की दृष्टि होना चाहिए कि बच्चों को आत्म दर्शन हो। आत्म दर्शन का अर्थ यह है कि बच्चों को ज्ञान और अज्ञान दोनों ही अच्छे लगे। और दोनों को ही सही ढंग से सीखा जाए औरसिखाया जाए।

भावे ने कहा कि नई तालीम और आज के समाज की रचना, इन दोनों में विरोध है। हमें आज की आर्थिक रचना ही बदलनी है और उसे बदलने के लिए ही बुनियादी शिक्षा या नई तालीम प्रस्तावित की गई है। वर्तमान सामाजिक रचना के हिसाब से शिक्षण पद्धति की बुराई बताते हुए उन्होंने कहा कि वर्तमान का तंत्र इस प्रकार है कि शिक्षकों की तनखाह में फर्क है, योग्यता अनुसार वेतन दिया जाता है, शिक्षकों में भी स्टेट्स बने हुए हैं। उन्होंने कहा यह बुराई नई तालीम में नहीं है। नई तालीम में शारीरिक श्रम, मानसिक श्रम, नैतिक योग्यता, और आर्थिक योग्यता सभी समान माने जाएंगे। अर्थात्, ऐसी शिक्षण व्यवस्था है, जिसमें शरीर व बौद्धिक श्रम

तथा नैतिक व आर्थिक योग्यता समान माना जाता है; सभी शिक्षकों को समान वेतन दिया जाता है।(भावे, 2010)

बुनियादी तालीम या नई तालीम के बारे में स्पष्टीकरण करते हुए भावे ने कहा की नई तालीम स्वतंत्र और एक अलग प्रकार की शिक्षण व्यवस्था है, जो वर्तमान की शिक्षण व्यवस्था से बिल्कुल अलग है। वर्तमान शिक्षा से कोई उपजाऊ धंधा नहीं सिखाया जाता। नई तालीम देश का उत्पादन बढ़ाएगी, छात्र को स्वावलंबी बनाएगी और साथ-ही-साथ छात्र को ज्ञानवान भी बनायेगी। अर्थात्, उन्होंने कहा कि नई तालीम नए मूल्यों की स्थापना करने के लिए बनाई हैं; शारीरिक और मानसिक श्रम के मूल्य में अंतर को मिटाने के लिए बनाई गई। नई तालीम क्षमता को समता की दासी समझती है। नई तालीम मानवता को पूजती है और इन तीनों को (लक्ष्मी, शक्ति व सरस्वती) उसकी सेवा का साधन समझती है।(भावे, 2010)

वर्तमान शिक्षण पद्धति के अंतर्गत बनी-बनाई पुस्तकों, व बने-बनाए ढाँचे का प्रयोग सर्वत्र उपयोग के लिये होता है; व सर्वमान्य पाठ्यक्रम की तरह होता है। यह पाठ्यक्रम और पुस्तकें सभी स्थानों व सारे प्रांतों के लिए उपयोगी नहीं है; इसमें बच्चों को दिलचस्पी नहीं होती है क्योंकि उनके इर्द-गिर्द का वातावरण पुस्तकों में बताए गए वातावरण से मेल नहीं खाता है। उन्होंने कहा कि पुस्तकें जरूरी है किंतु पुस्तकें ऐसी होनी चाहिए कि उसमें उस स्थिति, परिस्थिति व वातावरण का जिक्र हो जिस स्थान पर वह पुस्तक चले। जब ऐसा होगा, तो बच्चों में रुचि होगी पढ़ने में और उनको जल्दी ज्ञान मिलेगा और देर तक स्मृति में रहने वाला ज्ञान मिलेगा। हर स्थान की स्थिति, परिस्थिति और वातावरण के अनुकूल ही पाठ्यक्रम और पुस्तक बनाए जाने पर उन्होंने जोर दिया।(भावे, 2010)

आगे भावे ने कहा है कि नई तालीम का अर्थ यह नहीं है कि यह बच्चों को शुरु में देने की शिक्षा पद्धति है। उन्होंने बताया कि नई तालीम का मतलब यह है कि देश में शुरु से अंत तक जो भी शिक्षा दी जाए, भले ही उसको निम्न शिक्षा कहा जाए या मध्य की शिक्षा कहा जाए या उच्च शिक्षा कहा जाए, वह सारी-की-सारी शिक्षा एक ही बुनियाद पर खड़ी करनी होगी। यह नहीं हो सकता कि देहात के लोगों के लिए एक अलग तरह की शिक्षा चले और शहर वालों के लिए दूसरी तरह की शिक्षा। यह नहीं हो सकता है कि शिक्षा के प्रथम चार साल एक प्रकार की शिक्षा चले और उसके बाद कोई दूसरे प्रकार की शिक्षा चले जिसका पहले वाली से कोई ताल्लुक न हो। देश में सारी शिक्षा एक जैसी शिक्षा होनी चाहिये, तभी वह शिक्षा शिक्षा कहलाने लायक है और वह शिक्षा सबके लिए बिना किसी भेदभाव के हर गाँव और शहर के लिए है।(भावे, 2010)

भावे ने कहा कि वर्तमान में स्थिति यह है कि गाँव वालों को सेवा करना है और शहर वालों को गाँव वालों को लूटना। शहर का वातावरण यदि ऐसा ही रहा तो शांति नहीं रह सकती। जिन

गाँवों पर आधारित हैं शहर, उनकी सेवा में शहरों को लग जाना चाहिए और इसी दृष्टि से बच्चों को शिक्षा देनी चाहिए।(भावे, 2010)

भावे ने कहा कि बुनियादी शिक्षा या नई तालीम एक तंत्र नहीं है बल्कि विचार है और यह विचार है जैसा कि ब्रह्म विचार होता है। जिस प्रकार एक ब्रह्म विचार में से अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, और शुद्ध अद्वैत निकले हैं, उसी तरह से नई तालीम एक व्यापक शिक्षण विचार है। नई तालीम एक समुद्र है जिसमें विचार की सब नदियों का समावेश हो जाता है, स्त्री और पुरुष का भेद नहीं रहता, शहर और देहात समान होते हैं, विरोधी दिशा तो बिल्कुल ही नहीं हो सकती। शिक्षण को बहुत सारी शाखाओं और भागों में विभाजित करने और हर भाग की अलग-अलग शिक्षा देने से काम नहीं चलता है, बल्कि समस्याएं बढ़ जाती हैं और हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती है। जबकि नई तालीम बहुत सारे उद्देश्यों की एक साथ पूर्ति करती है। सारे भागों के लिए एक ही शिक्षा है; नई तालीम। नई तालीम की तुलना भावे ने सौर मंडल से की है। सौर मंडल में एक ग्रह दूसरे ग्रह के इर्द-गिर्द एक निश्चित गति और दिशा में आकर्षण शक्ति के कारण जिस प्रकार चलते रहते हैं, उसी तरह नई तालीम भी है क्योंकि इस नई तालीम से सब कार्यों के बीच आपस में संबंध बनाए रखने वाली आकर्षण शक्ति के समान शक्ति है।(भावे, 2010)

(गांधी, 2014) ने कहा है कि बुद्धि, शरीर और आत्मा की, यानी तीन तरह की शिक्षा होती है। नई तालीम के अलावा अन्य प्रकार से शिक्षा देने से सिर्फ बुद्धि बढ़ती है। जबकि नई तालीम से शिक्षा देने से बुद्धि तो बढ़ती ही है, इससे बुद्धि का संतुलित रूप में विकास भी होता है और साथ-ही-साथ आत्मिक ज्ञान भी तंदुरुस्त होता है। नई तालीम में आत्मिक शांति का अर्थ किसी सांप्रदायिक धर्म की शिक्षा से नहीं है और कोई किताबी ज्ञान से नहीं है। सभी धर्मों के अच्छे-अच्छे सिद्धांत वगैरह तो बच्चे जीवनयापन करते-करते सीखेंगे। नई तालीम तो कहती है कि शारीरिक श्रम से कार्य करते-करते ही आत्मिक आनंद लेते रहे और यदि कार्य के दौरान आत्मिक आनंद नहीं होता है, तो उस कार्य को नई तालीम की पालना करना नहीं कहेंगे, और उस कार्य को करना बंद करना पड़ेगा।

(गांधी, 2014) से स्पष्ट है कि गांधी के मतानुसार सांप्रदायिक धर्म की शिक्षा सरकार द्वारा नहीं दी जानी चाहिए। सरकार के अलावा कुछ मुसलमान द्वारा अपने धर्म की शिक्षा गलत तरह से दिए जाने के कारण गलत परिणाम प्राप्त होंगे। फिर भी यदि वे मुफ्त में ऐसी शिक्षा देते हैं तो उसका अर्थ यह नहीं है कि उनका ऐसा कार्य सही है। हमें तो नैतिक शिक्षा ही देना है, क्योंकि नैतिक शिक्षा सभी सांप्रदायिक धर्मों के मुख्य-मुख्य सिद्धांतों पर आधारित है।

नई तालीम का केंद्र बिंदु खेती को बनाने या न बनाने के बारे में गांधी ने स्पष्ट किया था कि खेती का कार्य करने से हस्त कला नहीं सिखाई जा सकती है और फिर नई तालीम का उद्देश्य बच्चों को कोई धंधा सिखाना भी नहीं है। नई तालीम का उद्देश्य बच्चों को हाथों से कार्यों को करा कर मनुष्य बनाना है, व बच्चों को जीवन का रस दिलाना है, और अंततः अपूर्ण बच्चों व इंसानों को पूर्ण मनुष्य बनाना है। और इसी कारण खेती करने का कार्य नई तालीम का केंद्र बिंदु नहीं है। फिर भी नई तालीम में खेती का कार्य आ ही जाता है। स्वपोषण के लिए फल, सब्जी, गेहूं, अनाज पैदा करने के कार्य से बच्चों के दिमाग को शिक्षा तो मिलती ही है, लेकिन उससे ज्यादा महत्व की बात यह है कि बच्चे शारीरिक श्रम करते हुए सबके साथ मिलजुल कर अपने शरीर की आवश्यक खुराक का सामान पैदा करेंगे। एक और बात यह है कि नई तालीम के अंतर्गत यदि खेती का जो कार्य होगा वह उन फसलों के लिए नहीं होगा जो धन कमाने के उद्देश्य से की जाती हैं; जैसे, तंबाकू, कपास व नील इत्यादि। बल्कि नयी तालीम के अन्तर्गत खेती का कार्य उन्हीं फसलों के लिए होगा जोकि जीवन के लिए आवश्यक हैं।(गांधी, 2014)

(गांधी, 2014)के अनुसार,गांधी ने बुनियादी तालीम के प्रमुख निम्न सिद्धांतों को बताया है:—

“1. पूरी शिक्षा स्वावलंबी होनी चाहिए।यानी,आखिर में पूँजी को छोड़कर अपना सारा खर्च उसे खुद निकालना चाहिए।” (गांधी, 2014)

“2. इस आखिरी दर्जे तक हाथ का पूरा पूरा उपयोग किया जाए।यानी, विद्यार्थी अपने हाथों से कोई—न—कोई उद्योग धंधा आखिरी दर्जे तक करें।”(गांधी, 2014)

“3. सारी तालीम विद्यार्थियों को प्रांतीय भाषा द्वारा दी जानी चाहिए।”(गांधी, 2014)

“4. इसमें सांप्रदायिक धार्मिक शिक्षा के लिए कोई जगह नहीं होगी। लेकिन बुनियादी नैतिकतालीम के लिए काफी गुंजाइश होगी।”(गांधी, 2014)

“5. यह तालीम, फिर उसे बच्चे लें या बड़े, औरतें लें या मर्द, विद्यार्थियों के घरों में पहुंचेगी।”(गांधी, 2014)

“6. चूंकि इस तालीम को पाने वाले लाखों—करोड़ों विद्यार्थी अपने—आपको सारे हिंदुस्तान के नागरिक समझेंगे, इसलिए उन्हें एक अंतर—प्रांतीय भाषा सीखनी होगी। सारे देश की यह एक भाषा नागरी या उर्दू में लिखी जाने वाली हिंदुस्तानी ही हो सकती है। इसलिए विद्यार्थियों को दोनों लिपियों अच्छी तरह सीखनी होंगी।” (गांधी, 2014)

(ठक्कर, 2012) ने शोध करने पर संक्षेप में बताया कि:—

“शिक्षा में (चाहे वो उच्च—शिक्षा हो या पूर्व—उच्च—शिक्षा) उच्च गुणवत्ता हासिल करने के लिये विशेष ध्यान कक्षा—8 तक की शिक्षा के पाठ्यचर्या में आमूल परिवर्तन करना होगा और इस

प्रकार परिवर्तित पाठ्यचर्या को सुनियोजित ढंग से लागू करना होगा। “शारीरिक-सह-बौद्धिक-सह-आध्यात्मिक” सायुज्य (एकरूप/एकीकृत) शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता है जिसके आध्यात्मिक पहलू में सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अस्तेय, शुद्धता, अस्वाद, योगाभ्यास, अभय, जात-मेहनत, अस्पृश्यता-निवारण, नम्रता, स्वदेशी का यथास्थिति पालन; ‘सर्वधर्म-समभाव’ का पालन; वाँछित धनार्जन ही करना; तथा शुद्ध व स्थिर बुद्धि, धैर्य, क्षमा, शान्ति, इन्द्रिय-निग्रहण, वास्तविक ज्ञान, विद्या, न्यायभाव, उत्तम चरित्र, आचार-विचार-आहार-विहार-व्यवहार नियम, अक्रोध को धारण कराना व उनके अनुप्रयोगों में पारंगतता कराना शामिल हो। ‘सत्य-सह-अहिंसा’, एक ही नीति मानी जाये। सबसे पहले उक्त नीति-निहित आध्यात्म पहलू की क्रियायों, उनके अभ्यासों व उनके अनुप्रयोगों से बाहुल्य शिक्षा व प्रशिक्षण उचित पाठ्यचर्या निर्मित कर बच्चों को दी जाये। अक्षर-ज्ञान, थिअरेटिकल ज्ञान व रटने के विषयों के बजाय अन्तर्विषयक व व्यवहारिक जीवन में घटित होने वाली स्थितियों को उजागर करने वाली क्रियाओं/प्रयोगों को अधिक से अधिक शामिल करते हुए वर्तमान पाठ्यक्रम को पुनर्गठित किये जाने की आवश्यकता है। बाल्यकाल से ही बच्चों को शारीरिक श्रम द्वारा कौशलों को सिखाकर अनुप्रयोग कराये जायें, मानवता की दृष्टि से न्यायोचित ही धनार्जन कराया जाये ताकि बेरोजगारी खत्म हो और उच्चशिक्षा का उचित आधार बने। सायुज्य शिक्षा पुस्तकीय ज्ञान पर नहीं बल्कि क्रियात्मक/प्रयोगात्मक होनी चाहिये; शिक्षा बच्चों को उनके इर्द-गिर्द परिवेश में ही दी जाये; क्रियायें अन्तर-विषयक हो तथा बच्चे के परिवेश से ही शिक्षक द्वारा बच्चे के अनुकूल चुनी गयी हों। क्रियाओं का बारम्बार अभ्यास करा कर छात्र को ‘मास्टर’ बनाने का उत्तरदायित्व शिक्षक पर हो। शिक्षक के उत्तरदायित्व का मूल्यांकन हो। योग शिक्षा को मानव के शैशवकाल से लेकर उच्च शिक्षा स्तर तक निरन्तर अभ्यास द्वारा अनिवार्यतः दिये जाने का प्रावधान पाठ्यचर्या में हो जिससे योग मानव की एक अपरिहार्य संस्कृति बने।”

गांधी के अनुसार, उच्च शिक्षा तभी कारगर व सार्थक है जब इसके पूर्व की शिक्षा- नींव की/प्रारम्भिक/ बुनियादी शिक्षा- सुदृढ़ हो। उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति यदि समाज को या समाज के व्यक्तियों को हानि पहुँचाने वाले कार्य करता या उनके विरुद्ध हिंसा या अपराध करता है; या उनका प्रत्यक्षतः /अप्रत्यक्षतः शोषण करता है; या उनका कत्ल करता है इत्यादि; तो क्या उस व्यक्ति को वास्तविक रूप में शिक्षित कहेंगे? कदापि नहीं। उसमें पशुत्व है, मनुष्यत्व नहीं; उसकी उच्च शिक्षा (आधारोपरान्त शिक्षा) जीवन के लिये परम् आवश्यक प्रमुख विवेक/ज्ञान- मनुष्यत्व को संधारित रखने का ज्ञान/विवेक- का अलंकरण नहीं बल्कि उक्त परम् आवश्यक ज्ञान/विवेक का हरण है।

निष्कर्ष यह हुआ कि उच्च शिक्षा (उक्त गौण शिक्षा) को मानव के लिये मनुष्यत्व संधारण में सार्थक उक्त प्रमुख शिक्षा -(नीति/चरित्र/विवेक की शिक्षा:- सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अस्वाद,

अपरिग्रह, जात-मेहनत, नम्रता, सर्वधर्म-समभाव, स्वदेशी, ब्रह्मचर्य, योग आदि अच्छे सद्आचरण के पालन व अनुप्रयोग में पारंगतता हासिल होना) – से ही अंकुरित होनी चाहिये; उसे मनुष्यत्व पर हावी नहीं होनी चाहिये; उसे मनुष्यत्व को क्षति पहुँचाने वाली नहीं होनी चाहिये।

आध्यात्म / नीति / नैतिक / चरित्र / योग / सर्वधर्मभाव / इन्द्रिय निग्रहण / पूर्ण-मानव की शिक्षा? महात्मा गाँधी के अनुसार, आध्यात्मिक का मतलब है नैतिक; धर्म का अर्थ है नीति; आत्मा की दृष्टि से पाली गयी नीति धर्म है। उनके अनुसार, सच्ची शिक्षा में निहित है- बालक की आत्मिक/आध्यात्मिक क्षमताओं को जाग्रत कर, उसका सर्वांगीण विकास करना।(ठक्कर, 2012)

(ठक्कर, 2012) से यह स्पष्ट होता है कि नैतिक शिक्षा मानव क्रिया-कलापों पर आधारित वह आभ्यन्तरिक शिक्षा है जो बालकों में सामाजिक नियमों तथा प्रथाओं के अनुकूल आचरणों को सहेजती हुई, उनमें सत्य, न्याय, धर्म, परोपकार, संयम, धैर्य, साहचर्य इत्यादि सद्गुणों व सद्भावनाओं का विकास सामाजिक एवं आत्मिक अनुभव की पृष्ठभूमि में किया करती है। (ठक्कर, 2012) ने लिखा है कि डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन नेअनुसार शिक्षा सूचना प्रदान करने एवं कौशलों का प्रशिक्षण देने तक सीमित नहीं है। इसे शिक्षित व्यक्ति को मूल्यों का विचार भी प्रदान कराना है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी व्यक्ति भी नागरिक हैं, अतः जिस समुदाय में वे रहते हैं उस समुदाय के प्रति उनका भी सामाजिक उत्तरदायित्व है।

(ठक्कर, 2012) ने सरोजिनी नायडूका सन्दर्भ देते हुए कहा कि हमारी शिक्षा ने हमें उपयुक्त मानसिक मूल्यों एवं पृष्ठभूमि से रहित कर दिया है तथा आत्म-प्रकाशन की अधिकारपूर्ण शैली को खोजने में जो सच्ची लगन एवं मौलिकता की अपेक्षा है, उससे भी वंचित कर दिया है। इस बात के समर्थन में रामशकल पाण्डेयका भी मत है। उनके अनुसार, शिक्षा जब तक जीवन के मूल्यों, आदर्शों एवं मान्यताओं का परिचय नहीं देती-तब तक वह 'शिक्षा' नहीं कही जा सकती। प्लेटोने भी शिक्षा का आशय उस प्रशिक्षण को कहा जो बच्चों में उचित आदतें उत्पन्न करके सद्गुणों का विकास कर सके। यह कार्य विवेक से होना चाहिए। नैतिक आदतों का निर्माण यान्त्रिक नहीं हो सकता। श्रीमद्भगवद्गीता निष्काम कर्म की शिक्षा देती है और उसके अनुसार आत्म-ज्ञान एवं विराट् पुरुष का ज्ञान प्राप्त करना ही 'शिक्षा' है। बौद्ध-दर्शनकेवल विद्वान् बनने की प्रक्रिया को शिक्षा नहीं कहता है। रत्ना नवरत्नम् के अनुसारव्यक्ति को सत्यान्वेषण करना चाहिए और नैतिक गुणों को व्यवहार में उतारना चाहिए।

शुद्ध व शांत बुद्धि

व्यक्ति शरीर तथा मन दोनों का संघात है। अतः सम्पूर्ण स्वस्थता के लिये मानसिक स्वस्थता भी उतनी ही आवश्यक होती है जितनी कि शारीरिक स्वस्थता। मानसिक स्वस्थता से आशय है कि भावनात्मक रूप से ऊर्जामयता, उत्साह, उमंग, कार्येच्छा को महसूस करना तथा इसके विपरीत आलस्य, अकर्मण्यता, जड़ता, मूढ़ता आदि का अभाव। इस प्रकार शारीरिक तथा मानसिक दोनों को मिलाकर सम्पूर्ण स्वस्थता का समीकरण बनता है। यद्यपि इसके आगे भी अन्य स्तर हो सकते हैं। किन्तु इस अध्ययन के हित में चर्चा यहीं तक सीमित है। शरीर तथा मन दोनों ही स्वास्थ्य के आधार हैं। इन दोनों में स्वास्थ्य की कमी किन्हीं आधिभौतिक, आध्यात्मिक तथा आधिदैविक कारणों से हो सकती है। इन्हें ही तापत्रय या त्रिदुःखाघात भी कहा गया है। बहराल, इन दुःखों के प्रभाव से शरीर या मन या दोनों अस्वस्थ हो सकते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि शरीर अस्वस्थ हो तथा मन उससे अप्रभावित हो, तथा ऐसा भी हो सकता है कि मन अस्वस्थ हो तथा शरीर उससे प्रभावित हो।

इस विषय में (श्रीमद्भगवद्गीता, 2000) का उल्लेख समीचीन है।

“प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।”2.55(श्रीमद्भगवद्गीता, 2000)

अर्थात्, जिस समय व्यक्ति मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को अच्छी तरह त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट रहता है, उस समय वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।”2.56 (श्रीमद्भगवद्गीता, 2000)

अर्थात्, दुःखों की प्राप्ति पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता, सुखों की प्राप्ति होने पर जो हमेशा निःस्पृहा है और जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं; ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।

नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।2.57(श्रीमद्भगवद्गीता, 2000)

अर्थात्, जो व्यक्ति सभी जगह स्नेहरहित रहता हुआ, शुभ या अशुभ वस्तु को पाने पर न तो प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उस व्यक्ति की बुद्धि स्थिर है। अर्थात्, इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को सब प्रकार से हटा लेना इन्द्रिय नियन्त्रण करना है, और इन्द्रिय नियन्त्रण करके व्यक्ति की बुद्धि स्थिर हो जाती है।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।2/58(श्रीमद्भगवद्गीता, 2000)

अर्थात्, जैसे कछुवा सब ओर से अपने अंडों को जैसे समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को सब प्रकार से हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।2/68(श्रीमद्भगवद्गीता, 2000)

अर्थात्, जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के विषयों से सब प्रकार निग्रह की हुई हैं, उसीकी बुद्धि स्थिर है।

इन्द्रियों के विषय में (श्रीमद्भगवद्गीता, 2000) में कहा है:

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।

इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ।।(श्रीमद्भगवद्गीता, 2000)

अर्थात्, पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति भी तथा दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच इन्द्रियोंके विषय (अर्थात्, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) और इस प्रकार, इन्द्रियों पर नियन्त्रण करने का साधन कहा जाता है: आध्यात्म, योग।

इन्द्रियों/चित्तवृत्तियों का निरोध? मस्तिष्क के चार प्रकार्य होते हैं जिनके ऊपर आत्मा होती है। मस्तिष्क के ये चार प्रकार्य हैं:— मन (निम्न मस्तिष्क), बुद्धि (उच्च मस्तिष्क), चित्त और अहंकार। मन बाहरी जगत से अन्तःक्रिया करता है तथा उनसे प्राप्त होने वाली बातों अपने अन्दर रखता है। मन में प्रश्न व द्विविधा भी उत्पन्न होते हैं और जब प्रश्नों या द्विविधा की मात्रा ज्यादा हो जाती है तो यह मन परेशान, व्याकुल, विक्षिप्त सा हो जाता है। मन किसी जगह पर किन्हीं अन्य लोगों के द्वारा किये जाने वाले कार्यों पर एक निगरानी रखने वाले की भाँति होता है। यह मन कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों नामक उसके आधीन काम करने वालों को आदेश देता है; किन्तु यह मन स्वयं निर्णयकर्ता नहीं होता है— सिर्फ आदेश—प्रसारक होता है। यह बुद्धि नामक तत्व के निर्णयों सम्बन्धी आदेशों को दस इन्द्रियों तक (अर्थात्, उस स्थान पर काम करने वाले व्यक्तियों तक) पहुँचाता है। जिस प्रकार अन्य लोगों के द्वारा किये जाने वाले कार्यों पर एक निगरानी रखने वाला उस जगह में कोलाहल, हलचल व शोर—शराबा आदि को सुनता है, उसी तरह मन निगरानी रखने वाले की भूमिका में इन्द्रियरूपी—नौकरों से उत्पन्न आवश्यकताओं, इच्छाओं, आकर्षणों, विकर्षणों आदि को, जिनकी छाप चित्त पर बनी होती है, पहचानता है। चित्त एक प्रकार की स्मृति की तरह होता है। इसमें गुप्त प्रभाव, विचार व अनुभव अंकित होते रहते हैं। यदि चित्त का बुद्धि, अहंकार और मन के साथ समुचित समन्वय नहीं होता है, तो चित्त भी परेशान हो जाता है। और यदि चित्त समुचित समन्वय नहीं कर पाता है, तो मन के अन्दर

हजारों-लाखों बातें एक साथ इकट्ठी होने लगती हैं, उठने लगती हैं और विप्लव करने लगती हैं। ऐसी गुप्त बातें (प्रभाव, विचार व अनुभव) मानों मन से माँग करती हैं कि उन्हें पूरा किया जाये। बुद्धि, जिसे निर्णय लेना होता है, यदि स्पष्ट नहीं होती है, तो उक्त छवियाँ मन को कार्य करने के लिये विवश करती हैं। अहंकार का अर्थ है 'मै'-पन, अर्थात् व्यक्तिगत अहं, जो अपने को अन्य से अलग सत्ता मानता है। अहं व्यक्ति की, उसके कार्यों के आधार पर, अलग पहचान बनाता है। और साथ-ही-साथ व्यक्ति में अलगाव, दर्द और विरक्ति का भाव उत्पन्न करता है। अहंकार एक बहुत शक्तिशाली तरंग है जिससे 'मै'-पन का भाव उत्पन्न होता है। अहंकार, चित्त (स्मृति यन्त्र भाँति) से भागीदारी करता है व मन से भागीदारी करता है, जबकि बुद्धि चीजों का संज्ञान करती है, चीजों में भेद करती है, और निर्णय लेती है। इस स्थिति में बुद्धि का शुद्ध होना बहुत जरूरी होता है, लोगों को 'मै'-पन / अहंकार से पीड़ित होने से बचाने के लिये और लोगों को आत्मज्ञान प्राप्त कराने की स्थिति में रखने के लिये। अहंकार/ईगो शब्द के दो भाव होते हैं। पहले भाव के अनुसार, अहंकार किसी चीज के अलंकार को नजरन्दाज करते हुए उस चीज के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कराता है। जबकि अहंकार के दूसरे भाव के अन्तर्गत, उसी चीज के वास्तविक रूप को न पहचानते हुए उस चीज के साथ जुड़ी अन्य बातों / आकर्षणों के प्रभाव से उस चीज की मिथ्या सत्ता से परिभाषित करता है। उदाहरण स्वरूप-माना कि ठीक एक ही तरह की दो गणेश की मूर्तियों में से एक को रंगकर व सजा कर आकर्षक बना दिया जाये। अहंकार के पहले भाव की स्थिति में बिना सजावट व बिना आकर्षक बनायी गणेश की मूर्ति को गणेश की मूर्ति बतायेगा। जबकि अहंकार के दूसरे भाव के अन्तर्गत मूल रूप की गणेश की मूर्ति को गणेश की मूर्ति न कहकर आकर्षण व सजावट की हुई मूर्ति को ही गणेश की मूर्ति कहेगा। यहाँ दूसरी स्थिति में, 'मै'-पन में आकर्षण और विकर्षण स्थित हैं। वास्तव में अहंकार स्वयं में बुरा नहीं होता है। अहंकार के बुरे भाव से अहंकार त्याज्य होता है। अहंकार का अच्छा उपयोग तब होता है, जब 'मै'-पन के बजाय 'उस'-पन या 'उसका'-पन, या 'सबका'-पन या 'वह'-पन का भाव हो। बुद्धि का अर्थ उच्चतर माइन्ड। बुद्धि आन्तरिक प्रज्ञा का द्वार है। 'बुद्धि'शब्द 'बुद्ध'शब्द से बना है। बुद्ध का अर्थ है, जो जाग गया है। बुद्धि में चीजों के ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति होती है, चीजों के मध्य भेद करने की शक्ति होती है और बुद्धि निर्णय लेने में सक्षम होती है। यदि बुद्धि शुद्ध है, मन के अनुसार काम करने की स्थिति में नहीं है, और निर्णय को मन द्वारा स्वीकार्य बनाने की स्थिति में है, तो बुद्धि चीजों के मध्य वास्तविक भेद का ज्ञान कर सकती है। बुद्धि किसी भी स्थिति में निर्णयकर्ता की स्थिति में होती है। बुद्धि के निर्णय की अनुपस्थिति में चित्त में स्थित विचार, भाव व अनुभव से उक्त निगरानी रखने वाला व्यक्ति, जिसे निर्णय लेने का अधिकार नहीं है, निर्देश/आदेश ग्रहण कर लेता है, जबकि चित्त में अंकित चीजें अहंकार से ग्रसित होती हैं। प्रायः बुद्धि भी चित्त के

अंकन से प्रभावित रहती है और इसके अनुसार गलत निर्णय ले लेती है। अतः बुद्धि को भी शुद्ध करने की आवश्यकता रहती है। अर्थात्, बुद्धि को अहंकार, चित्त व मन के प्रभाव से ग्रसित नहीं होने देना चाहिये। अर्थात्, ये तीनों बुद्धि द्वारा नियन्त्रित होना/ रखना चाहिये। बुद्धि की शुद्धि उपरान्त हमें तीन प्रकार की स्वतन्त्रतायें प्राप्त होती हैं। 1. कर्म से स्वतन्त्रता। अर्थात्, ऐसे आकर्षण व विकर्षण मुक्त कर्म ही सिर्फ करने की स्वतन्त्रता जो अहंकार, चित्त व मन से प्रभावित न हों। 2. विचारों की स्वतन्त्रता, तथा 3. अज्ञान की पराधीनता से स्वतन्त्रता। चारों तत्वों अहंकार, मन, चित्त, तथा बुद्धि को समझने व उनमें भेद समझने के बाद ही आत्मज्ञान होता है।

“विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि, अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है। परंतु अपने अधीन किये हुए अन्तःकरण वाला साधक अपने वश में की हुई, राग-द्वेष से रहित इन्द्रियों द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है। अन्तःकरण की प्रसन्नता होने पर इसके सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्तवाले कर्मयोगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर एक परमात्मा में ही भली-भाँति स्थिर हो जाती है। जैसे नाना नदियों का जल सब ओर से परिपूर्ण, अचल प्रतिष्ठावाले समुद्र में उसको विचलित न करते हुए ही समा जाता है, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही पुरुष परमशान्ति को प्राप्त होता है, भोगों को चाहने वाला नहीं। जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्ति को प्राप्त होता है, अर्थात् वह शान्ति को प्राप्त है।” (ठक्कर, 2012)

(ठक्कर, 2012) के अनुसार:—“जीवन में धनार्जन जरूरी होता है। धनार्जन ऐन-केन-प्रकारेण किया जा सकता है। किन्तु दूसरों का अहित करके कमाया हुआ, मानवता की दृष्टि से उचित नहीं है। इस बात के लिये बालकों को बाल्यकाल से परिचित और अभ्यस्त कराया जाना चाहिये ताकि वे अमानवता परिचायक व उत्पादक विधियों को इस्तेमाल कर धनार्जन में नहीं लगे। दूसरे, शिक्षा प्राप्त कर भी यदि बेरोजगार रहे, तो शिक्षा अर्थविहीन होती है। इसलिये बाल्यकाल से बच्चों को शारीरिक श्रम द्वारा कौशलों को सीखने व उपयोग करना सिखाया जाता है ताकि वे व्यावसायिक-कौशल-नैपुण्यता के साथ मानवता-समर्थित धनार्जन करना भी सीखें और शिक्षण अवधिउपरान्त बेरोजगार न रहें। यदि किसी स्थिति में पहुँचकर कोई पीढ़ी अपने पूर्वजों के

प्रयोगों से अनभिज्ञ हो जाती है तो वह नष्ट हो जाती है, और इस प्रकार पूर्व के हजारों वर्षों में अर्जित ज्ञान की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। अतः संस्कृति के संरक्षण व परिवर्धन की शिक्षाविहीनता का अर्थ, शिक्षा न होना होता है।”

अनेक शिक्षाशास्त्रियों का विचार है कि शिक्षा के पाठ्यक्रम में चार एच को स्थान मिलना चाहिए अर्थात् स्वास्थ्य, मस्तिष्क, हाथ तथा हृदय की शिक्षा बालकों को दी जानी चाहिए।

मुदालियर शिक्षा आयोग, 1952 ने शिक्षा में निम्न दोष बताये थे— 1. पाठ्यक्रम की विचारधारा संकुचित है। 2. पाठ्यक्रम सैद्धान्तिक व पुस्तकीय ज्ञान पर आधारित है। 3. इसमें रटने पर बल दिया जाता है। 4. पाठ्यक्रम व्यावहारिकता से परे है। 5. इसमें विषयों की भरमार है जिससे यह बोझिल हो गया है। 6. पाठ्यक्रम वैज्ञानिक व तकनीकी ज्ञान से परे है। 7. यह परीक्षा केन्द्रित है। 8. यह छात्रों की आवश्यकताओं व क्षमताओं के अनुकूल नहीं है। 9. यह कोई निश्चित लक्ष्य प्रस्तुत नहीं करता। 10. इसमें विभिन्न विषयों के समन्वय को कोई स्थान नहीं दिया गया है। इनके अतिरिक्त भी पाठ्यचर्या में कमियाँ हैं— पाठ्यक्रम का सैद्धान्तिक अधिक व व्यावहारिक कम होना; व्यापक दृष्टिकोण से निर्माण का अभाव; समन्वय का अभाव; व्यक्तिगत भिन्नताओं के सिद्धान्त की उपेक्षा; परीक्षा प्रधान पाठ्यक्रम; समायोजन की क्षमता उत्पन्न करने में असमर्थ; तथा पाठ्यक्रम का क्रिया प्रधान न होना।

(ठक्कर, 2012) के अनुसार:—“उच्च शिक्षा के पूर्व स्तर की शिक्षा की स्थिति, विशेषरूप से कक्षा-10 तक की शिक्षा की स्थिति, बहुत कमजोर है और इस कमजोरी का मुख्य कारण अनुपयुक्त पाठ्यचर्या है। अतः यदि हमें शिक्षा में (चाहे वो उच्च शिक्षा हो या पूर्व-उच्च शिक्षा) उच्च गुणवत्ता हासिल करनी है, तो विशेष ध्यान कक्षा-10 तक की शिक्षा के पाठ्यचर्या में आमूल परिवर्तन करने और इस प्रकार परिवर्तित पाठ्यचर्या को सुनियोजित ढंग से लागू करने पर देना चाहिये।”

1.1.1 गुणात्मक व दार्शनिक शोध विधि

शोध एक बौद्धिक, रचनात्मक, वैज्ञानिक, संशोधनीय, पुनरावृत्तियोग्य वसार्वभौमिक प्रक्रिया होती है जिसमें किसी विशेषज्ञ द्वारा किसी समस्या का व्यवस्थित, वस्तुनिष्ठ, सोद्देश्य, तर्कसंगत तथा इंद्रियानुभविक प्रयत्न किया जाता है। इसके परिणाम संचरण योग्य होते हैं। इसमें किसी अनुभूत

समस्या का समाधान पाने या समाधान पाने की ओर बढ़ना, नवीन सामान्यीकृत तत्व/सिद्धांत/अनुप्रयोग का विकास करना निहित होता है। इसके परिणाम अवलोकित अनुभवों या आनुभविक प्रमाणों पर आधारित होते हैं।

शोध की एक विधि है: दार्शनिक व व्याख्यात्मक शोध विधि। दार्शनिक व व्याख्यात्मक शोध विधि के अंतर्गत किन्हीं विचारों का, विचारप्रणाली का, दो से अधिक विचार प्रणालियों का एक साथ, किसी नई विचार प्रणाली का प्रभाव, किसी चिंतक के विचारों का, दो से अधिक चिंतकों के विचारों का एक साथ, किसी चिंतक के विचारों के प्रभाव, नवीन संकल्पनाओं आदि का विश्लेषण, संश्लेषण व मूल्यांकन किया जाता है। किसी दिए गए समयकाल में किन्हीं प्रचलित धारणाओं, व्यवहारों तथा प्रक्रियाओं से संबंधी चिंतकों, संगठनों, आंदोलनों, आधारभूत विचारों व सिद्धांतों का तर्कसंगत अध्ययन करके उन घटनाक्रमों को समझना दार्शनिक व व्याख्यात्मक शोध कार्य में निहित होता है; किंतु यह शोध विधि ऐतिहासिक शोध विधि नहीं होती है क्योंकि दार्शनिक शोध विधि अमूर्त व मीमांसात्मक विश्लेषण संबंधी होती है, इसमें क्यों व कैसे प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किये जाते हैं, और इसमें मानव व्यवहार और अभ्यासों में निहित विचारों व सिद्धांतों आदि पर अधिक जोर होता है; जबकि ऐतिहासिक शोध विधि द्वारा किसी समयकाल में प्रचलित व्यवस्था की तथ्यात्मक विवेचना की जाती है व सामान्यतः यह शोध मूर्त व विशिष्ट से संबंधित होता है तथा इससे क्या था प्रश्न का उत्तर मिलता है।

इस प्रकार दार्शनिक शोध उस शोध को कहते हैं जिसमें पांडित्य व विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि तथा संश्लेषणात्मकता का प्रयोग कर प्रमाणित ग्रंथों व विश्वसनीय ग्रंथों का गहन अध्ययन उस व्यक्ति/शोधार्थी द्वारा किया जाता है जिसे दार्शनिक विचारों का, प्रमुख दार्शनिक संप्रदायों का तथा प्रमुख दार्शनिक प्रवृत्तियों का गहन ज्ञान हो तथा उनका विश्लेषण व संश्लेषण कर निष्कर्ष निकालने की विशिष्ट योग्यता हो।

दार्शनिक विधि के प्रयोग के लिए तर्कशास्त्र, तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, मूल्य शास्त्र व नीतिशास्त्र का यथास्थिति प्रयोग किया जाता है, क्योंकि इसके अंतर्गत किसी विचारप्रणाली या किन्हीं प्रणालियों के अध्ययन का संबंध आम सामाजिक जीवन को प्रभावित करता है। अतः दार्शनिक शोध विधि का प्रयोग करते समय चिंतक के या चिंतकों के जीवन, व्यक्तित्व, कार्यों तथा विचारों का ज्ञान होना शोध में सहायक होता है।

इस शोध विधि में वही चरण होते हैं जो अन्य शोध में होते हैं, किंतु उपागम/एप्रोच में अंतर होता है। सामान्यतः इस शोध विधि में निम्न चरण होते हैं:—1. समस्या का चयन करना, 2. संबंधित साहित्य का अध्ययन करना, 3. आधार सामग्री का संकलन व संगठन करना, 4. आधार सामग्री को व्यवस्थित रूप में विश्लेषित व संश्लेषित करना, तथा 5. शोध प्रबंध तैयार करना।

अन्य शोध विधियों की तरह दार्शनिक शोध में शोध-प्रबंध का आकार व शोध-प्रबंध में अध्यायों की संख्या के बारे में कोई पूर्व निर्धारित मापदंड नहीं होता है, और ऐसा मापदंड इस शोध की

विशेषताओं व उद्देश्यों की दृष्टि से पूर्व निर्धारित किया भी नहीं जा सकता है क्योंकि शोध-प्रबंध का आकार व इसके अंतर्गत शामिल किए जाने वाले अध्यायों की संख्या व उनका वितरण बहुत अधिक सीमा तक शोध की समस्या की प्रकृति एवं उपलब्ध आधार सामग्री के ऊपर आधारित होते हैं।

विषय वस्तु विश्लेषण (कंटेंट एनालिसिस) को अंतर्वस्तु विश्लेषण या पाठ्य-वस्तु विश्लेषण या अभिलेख विश्लेषण भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत लिखित व मौखिक संप्रेषण से प्राप्त आधार सामग्री का विश्लेषण कर के वस्तुनिष्ठ ढंग से सूचनाओं की विवेचना किया जाता है।

विषय वस्तु विश्लेषण सामान्यतः वर्तमान डॉक्युमेंट्स व प्रकरणों का किसी घटनाक्रम सम्बन्धीविषय-वस्तु उद्देश्य पर केंद्रित रहता है। यह किसी घटनाक्रम की स्थिति को अथवा किसी विशेष समय काल में उसके विकास की व्याख्या करता है। यह अध्ययन कभी-कभी बहुत आवश्यक व उपयोगी होता है। इसके उद्देश्य उदाहरण बतौर निम्न हैं:- किसी प्रचलित तरीके या दशा का वर्णन करना, किसी प्रकरण या समस्या की महत्ता को जानना, किसी प्रस्तुति में पक्षपात आदि का मूल्यांकन करना, किसी पाठ्य सामग्री की त्रुटियों आदि का विश्लेषण करना, लेख की शैली, लेखक के विश्वासों व दृष्टिकोणों और विचारों को पहचानना, घटना के संभावित कारणों की व्याख्या करना।

इसमें सामान्यतः डाकूमेंट, रिपोर्ट, प्रिंटेड मेटेरियल, लेटर, बायोग्राफी, डायरियाँ, पुस्तकें, व पत्रिकाएं आदि का प्रयोग किया जाता है। उक्त सामग्री की बाह्य व आंतरिक समालोचना द्वारा प्रामाणिकता व विश्वसनीयता जानी जाती है। इसमें अभिकथनों में क्या कहा गया है और कैसे कहा गया है का ज्ञान किया जाता है।

1.1.2 संवाद उपागम

(ठक्कर, 2012) ने पाया है कि परम्परागत प्रौढ़ शिक्षा में प्रायः एकालाप/एकतरफा विधि से शिक्षण होता है जिसमें अधिगमकर्ता शिक्षक द्वारा ही जाने वाली क्रियाओं को तथा दी गयी सूचनाओं को सिर्फ देखता व सुनता है।

(ठक्कर, 2012) के अनुसार संवाद का अर्थ आदि निम्न हैं, दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य वार्तालाप और राय या विचारों का आदान-प्रदान। संवाद का उपयोग पूर्वी व पश्चिमी विचारकों द्वारा किया गया, जैसे सुकरात, पाउलों फ्रेर, डेविड बोह्ल, जे. कृष्णामूर्ति, मार्टिन ब्यूबर तथा अनेक अन्य। संवाद एक प्रसिद्ध व पुरानी तकनीक है। संवाद सुरक्षित व प्रसन्नतापूर्ण वातावरण में, किन्तु गपशप माहौल में नहीं, विचारों का आदान-प्रदान करने की प्रक्रिया है। संवाद का उद्देश्य है, स्वयं के बारे में जानना और अनुकूल व स्पष्ट तरीके से दूसरों के विश्वास, अनुभूतियों, रुचियों तथा/या जरूरतों को जानना। यद्यपि सहभागी विचारों को चुनौती दे सकते हैं या प्रश्न कर सकते हैं, तथापि इसमें एक-दूसरे से वाद-विवाद करने के बजाय समझ-बूझ

उत्पन्न करने पर ध्यान दिया जाता है। इसमें खास बात गहन ध्यान से सुनना है। अंतिम रूप में संवाद से कुछ लाभकारी नतीजा निकलना चाहिये।

संवाद शिक्षा के प्रमुख सिद्धान्त हैं— संवाद, अधिगमकर्ता ही निर्णयकर्ता, उपलब्धि आधारित उद्देश्य तथा अधिगम कार्य। अधिगम आवश्यकता व संसाधन मूल्यांकन; सुरक्षा; अच्छे सम्बन्ध; क्रम व पुनर्बलन; आदर; विचार, अनुभूति व क्रियाएँ, प्रासंगिकता व आसन्नता; स्पष्ट भूमिकाएँ; टोली व छोटा समूह; संलग्नता तथा उत्तरदायित्व संवाद शिक्षण के प्रत्येक स्तर पर पालन किये जाने वाले प्रमुख सिद्धान्त व व्यवहारिक बातें हैं।(ठक्कर, 2012)

संवाद का उपयोग औपचारिक, अनौपचारिक व औपचारिकेतर तीनोंस्थितियों में किया जा सकता है, अर्थात्संरचित व असंरचित, तथा इरादतन व गैर-इरादतन बतौर हो सकता है।

शिक्षा क्षेत्र में संवाद उपागम का उपयोग

(ठक्कर, 2012) के अवगत कराया है कि:—“बी. के. पासी व एस. पासी के अनुसार, औपचारिक पृष्ठभूमि में संवाद द्वारा शिक्षण के प्रयोग स्कूली स्तर पर और विश्वविद्यालय स्तर पर किये जा रहे हैं। कक्षा में संवाद द्वारा शिक्षण दिये जाने के स्थायी चरण नहीं हैं; किन्तु इन चरणों का उपयोग किया जा सकता है:

1. संवाद के प्रति उन्मुखीकरण,
2. समूह निर्धारण,
3. विषय घोषित करना और प्रश्न व्यक्त करना,
4. निष्कर्षों से अवगत होना,
5. संश्लेषण करना,
6. पुनर्विचार तथा
7. परिणामी अधिगम का मूल्यांकन करना।

संवाद का उपयोग सामूहिक विचारों, सुझावों, सलाहों, स्थितियों तथा भावों आदि को जानने के लिये किया जा सकता है। उदाहरण स्वरूप: 1. कर्मचारियों की सभा, 2. संरक्षकों की सभा, 3. विद्यार्थियों की सभा, 4. समुदाय व प्रबंधकों की सभा और सम्मेलन संगोष्ठियों के आयोजन हेतु।”

किसी क्रान्फ्रेन्स में शोध पत्र प्रस्तुत करने में संवाद उपागम के अन्तर्गत भी चरणों को भी बी. के. पासी व एस. पासी ने दिया है।

(ठक्कर, 2012) के अनुसार, “शिक्षा प्रबंधकों व नेतृत्वाधिकारियों को (क) औपचारिक, अनौपचारिक व औपचारिकेतर शिक्षा सम्बन्धी स्थितियों में, (ख) मस्तिष्क आधारित अधिगम की

स्थिति में तथा (ग) समूह उपचार की स्थिति में संवाद उपागम को प्रयोग करने की ओर ध्यान देना चाहिये।”

वर्तमान शोध में संवाद उपागम का प्रयोग

संवाद का उपयोग इनफॉर्मल स्थिति में भी किया जा सकता है— जैसे मस्जिद, गुरुद्वारा, चौपाल, आश्रम, मन्दिर आदि। इनफॉर्मल स्थिति में संवाद उपागम का प्रयोग विसर्जन आश्रम, नौलखा, इन्दौर में प्रत्येक बुधवार को भी सायं 5 से 7 बजे तक की अवधि में किया जाता है। इसमें विभिन्न समाज के करीब 15 महिलाओं व पुरुषों, जिनकी आयु 20 से 75 वर्ष तक हो, का समूह भाग लेता है। समूह की सभा में विचार बिन्दु/समस्या/चिन्ता आदि व्यक्त किये जाते हैं, और उनमें से एक का चुनाव कर वार्तालाप किया जाता है। पूर्वनिश्चित चरण व प्रक्रिया नहीं होती है। अन्त के 15 मिनट अनौपचारिक बातचीत के लिये होते हैं। सभा का समापन ‘इन्सान का इन्सान से है भाईचारा, यही पैगाम हमारा, यही पैगाम हमारा’ गीत गाकर किया जाता है। संवाद के प्रथम चक्र में ‘हिन्द-स्वराज’ के अध्याय-18, जिसका शीर्षक ‘शिक्षा’ है, से परिचय कराकर एक-एक कर समूह के समस्त लोगों के विचार प्रकट हुए, जबकी दूसरों ने सिर्फ सुना; फिर दूसरे चक्र में पुनः समूह के समस्त लोगों ने, बिना वाद-विवाद के तथा प्रथम चक्र में व्यक्त विचारों के संदर्भ में, अपने-अपने विचार एक-एक कर व्यक्त किये; फिर विचारों का संयोजन किया गया तथा पुनः एक चक्र में संयोजित विचारों से परिणित सार पर सभी ने विचार व्यक्त किये। अन्त में सर्वसम्मति से निष्कर्ष निकले कि वर्तमान की शिक्षा पद्धति में बदलाव की आवश्यकता है क्योंकि समाज में गरीबी, बेरोजगारी, पर्यावरण, आतंकवाद, हिंसा, अनैतिकता आदि अनैतिक बातें फैली हुई हैं और लोगों में सेवाभाव तो रह ही नहीं गया है तथा सभी विज्ञान व भौतिकता की दौड़ व प्रतिस्पर्धा में मग्न हैं, भाई-चारा तो खत्म सा हो गया है। कुछ लोग शासन करते हैं, दूसरे सारे लोगों पर। शासन करने वाले खुद जानबूझकर गलत कार्य करते हैं और उसका दुष्परिणाम सारे अन्य जीव-निर्जीव को भोगना पड़ता है। इन सब बातों का इलाज व मानवता को व्याप्त कराने का एक और सबसे पहला साधन है, दुरस्त शिक्षा।

(ठक्कर, 2012) के अवगत कराया है कि:—“संवाद द्वारा बुरी तरह उलझी समस्या, यथा धर्म और नीति आदि, का भी समाधान सर्वसम्मत से किया जा सकता है। यह बात उपरोक्त संवाद संगोष्ठियों के परिणामों से स्वतः प्रमाणित है। संवाद उपागम का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में औपचारिक, अनौपचारिक तथा औपचारिकेत्तर तीनों ही स्थितियों में करके मानवता हेतु हानिकारक समस्याओं का समाधान बहुत हद तक किया जा सकता है। संवाद उपागम का उपयोग शिक्षा अनुदेशन व शिक्षा प्रबन्धन दोनों क्षेत्रों में किया जाना चाहिये। संवाद व संवाद-शिक्षण जैसे अत्याधिक उपयोगी उपागम, जो कि अभी भी अपने शैशवकाल में है, का

अनुप्रयोग अधिक से अधिक पूर्ण निष्ठा व विश्वास के साथ तथा तयशुदा कार्यक्रम के अनुसार किये जाने की अपरिहार्य आवश्यकता है। विसर्जन आश्रम में संवाद द्वारा प्रायोगिक तौर पर निकले हुए निष्कर्षों पर आगे कार्यवाही करके शिक्षा की ज्वलन्त व गम्भीर समस्याओं का समाधान होने की सम्भावना है। इसके लिये अधिकाधिक व शीघ्रातिशीघ्र प्रायोगिक शोध किये जा सकते हैं।”

1.2 शोध समस्या

शिक्षा के सम्बन्ध में गांधी के विचारों का वृहद ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा में साहित्य का अध्ययन करने के उपरान्त यह पाया गया कि, सिवाय एक स्थान को छोड़कर (यानी उनकी रची हुई पुस्तक “हिन्द स्वराज”), गांधी ने विशेषतः “शिक्षा” तथा “नीति शिक्षा” के सम्पूर्ण विषय पर प्रकाश डालने हेतु कोई साहित्य की रचना नहीं की। बुनियादी शिक्षा/नई तालीम में भी “नीति शिक्षा” के बारे में विवरण नहीं पाया।

गांधी ने उनके द्वारा रचित 20 अध्यायों की ‘हिन्द स्वराज’ पुस्तक में अध्याय-18 में विशिष्टतः “शिक्षा” पर अपने विचार लिखे हैं। इसमें शिक्षा के सम्बन्ध “नीति” शब्द कई बार आया है, जैसा नीचे लिखा है:—“शिक्षा का साधारण अर्थ अक्षर-ज्ञान ही होता है;...। लेकिन पश्चिम के असर, कि लोगों को शिक्षा देनी चाहिये, के कारण-बिना आगे-पीछे की बात सोचे-...नीतिके नियम को समझने और उनका पालन करने वाले को अक्षर-ज्ञान देने की जरूरत नहीं है क्यों कि अक्षर-ज्ञान से {जिसका अच्छा उपयोग भी हो सकता है और बुरा उपयोग भी हो सकता है} दुनिया को फायदा के बदले नुकसान ही हुआ है।”(गांधी, 1949)

“प्राथमरी-प्राथमिक शिक्षा या ऊंची शिक्षा से हम मनुष्य नहीं बनते-उससे हम अपना कर्तव्य नहीं जान सकते।”(गांधी, 1949)

“जब हमने नीतिकी नींव मजबूत बना ली हो, तब अगर हमें अक्षर-ज्ञान पाने की इच्छा हो, तो उसे पाकर हम उसका अच्छा उपयोग कर सकते हैं। हमारे पुराने स्कूल ही काफी हैं। वहाँनीतिको पहला का स्थान दिया जाता है। वह सच्ची प्राथमिक शिक्षा है। उस पर हम जो इमारत खड़ी करेंगे वह टिक सकेगी।...जो लोग अंग्रेजी पढ़े हुए हैं उनकी संतानों को पहले तोनीतिसिखानी चाहिये। बहुत से शास्त्र सीखने का दंभ और वहम हमें छोड़ना होगा। सबसे पहले तो धर्म की शिक्षा यानीतिकी शिक्षा दी जानी चाहिये।...धर्म की शिक्षा बेशक मुश्किल काम है। धर्म के आचार्य दंभी और स्वार्थी मालूम होते हैं। उनके पास पहुँच कर हमें नम्र भाव से उन्हे समझाना होगा। लेकिन उनमें अगर सदबुद्धि पैदा न हो, तो अंग्रेजी शिक्षा के कारण हममें जो जोश पैदा हुआ है उसका उपयोग करके हम लोगों को नीतिकी शिक्षा दे सकते हैं। यह कोई

बहुत मुश्किल बात नहीं है। पश्चिम की सभ्यता को निकाल बाहर करने की ही हमें कोशिश करनी चाहिये। दूसरा सब अपने-आप ठीक हो जायगा।” (गांधी, 1949)

लेकिन उपरोक्त वर्णित गांधी जी के विचारों में नीति शब्द का आशय अस्पष्ट है, या कह सकते हैं कि नीति शब्द का आशय अनुपलब्ध है, और इस कारण से गांधी के विचारों के अनुसार शिक्षा व नीति शिक्षा का पूर्ण अर्थ भी नहीं समझा जा सकता है। ऐसी स्थिति में गांधी द्वारा शिक्षा के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न स्थानों व भिन्न-भिन्न समयों पर व्यक्त विचारों व उनके द्वारा किये गये कार्यों का विधिवत् अध्ययन करके उनके अनुसार शिक्षा व नीति का वास्तविक अर्थ जाना जा सकता है। यहाँ पर पूर्व में कहा गया है कि उन्होंने अपने आश्रम में अपने को पिता के स्थान पर रखकर कार्य आरंभ किया और टालस्टॉय आश्रम में चरित्र निर्माण किये जाने पर बल दिया। इसी प्रकार गांधी ने वर्ष 1930 में यरवडा जेल में रहते हुए भी पत्रों द्वारा अपने आश्रमवासियों को शिक्षा दी थी, जोकि “मंगल प्रभात” नामक पुस्तक में लिखी हुई हैं। इसका भी अध्ययन करके उनके अनुसार नीति शिक्षा का वास्तविक अर्थ जाना जा सकता है। इस शोध का उद्देश्य भी यही है, और साथ-ही-साथ नीति शिक्षा का समाधान गुणात्मक व दार्शनिक अध्ययन द्वारा ज्ञात करना भी है। इस अध्ययन में विभिन्न विद्वानों, संस्थानों, सरकारों आदि द्वारा व्यक्त विचारों का अध्ययन भी सम्मिलित है।

1.3 शोध प्रश्न (शोध उद्देश्य)

इस शोध का उद्देश्य, गांधी रचित “हिन्द स्वराज” के “शिक्षा” अध्याय तथा “मंगल प्रभात” के परिप्रेक्ष्य में “नीति शिक्षा” की संकल्पना व उसका समाधान गुणात्मक व दार्शनिक अध्ययन” द्वारा ज्ञात करना है।

इस शोधकार्य द्वारा निम्न शोध प्रश्नों का उत्तर खोजा जायेगा:-

1. “नीति शिक्षा’ का क्या अर्थ है?”
2. “नीति शिक्षा’ क्या ‘धर्म शिक्षा’ का पर्याय है?”
3. “नीति शिक्षा’ में किस / (किन) नीति (नीतियों) की शिक्षा दी जाये? ‘नीति शिक्षा’ के अन्तर्गत दी जाने वाली नीतियों के अर्थ क्या है?”

4. (क) “नीति शिक्षा’ लोगों को किस आयुकाल में दी जाये? अर्थात्, यदि लोगों के किन्ही विशेष आयुकाल में ‘नीति शिक्षा’ दी जानी है, तो प्रत्येक आयुकाल में किस प्रकृति की ‘नीति शिक्षा’ दी जाये?”

(ख) “नीति शिक्षा’ क्या किसी विशेष प्रकार की शिक्षा के साथ दी जाये? यदि हाँ, तो ‘नीति शिक्षा’, किन विशेष प्रकारों की शिक्षा के साथ दी जाये और किस गहराई की हद तक दी जाये?”

5. “क्या ‘नीति शिक्षा’ अध्यापन-प्रशिक्षणार्थियों के लिये भी है?”

6. “नीति शिक्षा’ क्या बेरोजगारी की स्थिति का कारक नहीं होगी और क्या ‘नीति शिक्षा’ विद्यमान बेरोजगारी को दूर करने में सहायक होगी?”

7. “क्या ‘नीति शिक्षा’ भ्रष्टाचार पर काबू पा सकेगी?”

8. “क्या ‘नीति शिक्षा’ आतंकवाद व हिंसा पर काबू पा सकेगी?”

9. “क्या ‘नीति शिक्षा’ गरीबी की स्थिति पर काबू पा सकेगी?”

10. “क्या ‘नीति शिक्षा’ वैज्ञानिक व तकनीकी विकास में बाधा नहीं होगी?”

11. “क्या ‘नीति शिक्षा’ वैश्वीकरण में बाधा नहीं होगी?”

12. “नीति शिक्षा’ क्या ‘सकल राष्ट्रीय खुशहाली’ (ग्रॉस नेशनल हैप्पीनेस-जी.एन.एच.) का पर्याय है?”

1.4 शोध का क्षेत्र व उपयोगिता

बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और अन्तरात्मा में पाये जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का विकास करने वाली शिक्षा व शिक्षा प्रणाली की स्थापना करने में शोध सहायक होगा। मानव, मानवीयता, नीति, और वसुधैव कुटुम्ब के वास्तविक जगत में चलन में परिणिति होने की स्थिति बनेगी।

1.5 शोध का सीमांकन

इस शोध की सीमा गांधी रचित “हिन्द स्वराज” के “शिक्षा” अध्याय तथा “मंगल प्रभात” के परिप्रेक्ष्य में “नीति शिक्षा” सम्बन्धी विचारों का अध्ययन गुणात्मक व दार्शनिक अध्ययन द्वारा करने तक ही है, और वो भी पूर्वोक्त 12 शोध प्रश्नों तक।

1.6 शोधविधि तथा कार्य-योजना

इस शोध हेतु गुणात्मक व दार्शनिक अनुसंधान विधि का प्रयोग किया जायेगा। महान लेखकों, विद्वानों, संगठनों, संस्थाओं, आन्दोलनों, सरकारों आदि के विचारों, धारणाओं, व्यवहारों, सम्प्रत्ययों आदि का संकलन व आलोचनात्मक, तार्किक ढंग से तुलना, अध्ययन, विश्लेषण, संश्लेषण तथा मूल्यांकन करके निष्कर्ष व सुझाव प्रस्तुत किये जायेंगे। इसके अन्तर्गत यथा आवश्यकता विषयवस्तु विश्लेषण भी सम्मिलित है।

शैक्षिक चिन्तन व उसका विश्लेषण करने हेतु विश्वविख्यात प्रोफेसर बी.के. पासी व डा. (श्रीमति) सुभाषिनी पासी द्वारा ईजाद की हुई संवाद-पुनर्संवाद विधि/ उपकरण का भी उपयोग किया जायेगा।

दैनिक रूप से पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, विश्वकोषों, प्रकाशित व अप्रकाशित अनुसंधान प्रबन्धों, सारांश-पत्रिकाएँ, पत्रकों, विचार-विमर्शों, शब्दकोषों, डायरी, आत्मकथा, संकलनों आदि का अध्ययन कर नोट्स तैयार करने की योजना है। विख्यात अध्यापकों, चिन्तकों, मार्गदर्शक से भी लगातार विचार-विमर्श करते रहने की योजना है जब तक की अनुसंधान प्रबन्ध स्वीकृत नहीं हो जाता है। ये सभी सूचनाएँ व ज्ञान प्रदत्त बतौर होंगे तथा स्रोत विश्वविस्तारित पूर्वोक्त महान लेखक, विद्वान, चिन्तक आदि के विचार, अनुभव, सिद्धान्त आदि होंगे।

निर्धारित अवधि में कार्य पूर्णरूपेण समाप्त करने की योजना के अन्तर्गत अन्तिम 6 महिनों में शोध प्रबन्ध समरी (संक्षेप) तथा शोध प्रबन्ध (थीसिस) को विश्वविद्यालय को प्रस्तुत करने का कार्य रहेगा।